सन्न्यासपद्धतिः

श्रीविष्णुतीर्थश्रीमचरणाः

Sannyāsapaddhati, an independent work dealing with the practices of ascetics according to Pancarātra Literarure by Śrī Viṣṇutīrtha, younger brother of Śrī Ānandatīrtha

#### Release Version 0.5

2008

#### Contact

sripadmanabha@gmail.com

#### (5)Copyleft

No rights reserved.

We encourage true seekers to copy, enhance or modify any part of this book or the entire book.

#### **Typesetting**

This book is generated using LaTeX  $2\varepsilon$ . and Devnag on ubuntu 8.04.



Figure 1: The photograph of Kumāraparvata, near Kukke Subrahmanya, Karnataka, India where Śrī Viṣṇutīrtha is believed to be performing tapas even today.



Figure 2: The map of Kumāraparvata

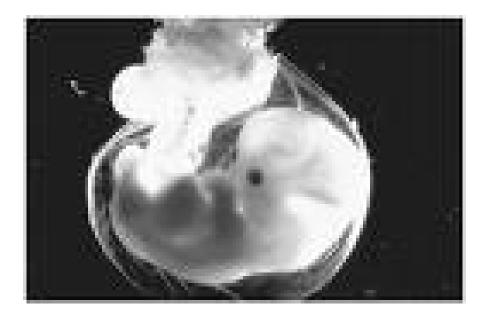


Figure 3: The photograph of six weeks old human embryo in situ. See page ? for the description.

# विषयानुक्रमणिका

| A | ckno     | wledgements                 | xvi |
|---|----------|-----------------------------|-----|
| O | vervi    | iew x                       | vii |
| ? | प्रथम    | गोऽध्यायः                   | \$  |
|   | ?        | सन्यासग्रहणकालकथनम्         | 2   |
|   | 2        | अधिकारिनिरूपणम्             | 3   |
|   | 3        | तत्र प्रमाणकथनम्            | 3   |
|   | 8        | प्रथमवेदानध्ययने दोषवर्णनम् | 8   |
|   | ¥        | मनुष्यस्य प्रयोजनकथनम्      | ч   |
|   | ६        | विष्णुभक्तेः प्राधान्यकथनम् | ч   |
|   | ૭        | पुरुषपापप्रवृत्तिकथनम्      | १०  |
|   | <b>5</b> | यमदृतवशत्वकथनम्             | १०  |

| ९            | (यममार्ग) नरकप्रवेशकथनम्११            |
|--------------|---------------------------------------|
| १०           | यातनाकथनम्                            |
| <b>\$</b> \$ | तमोनिरूपणम्                           |
| १२           | तमस्माधननिरूपणम् १३                   |
| १३           | तमसि दुःखानुभवप्रकारः १४              |
| १४           | तमःपतितानुशोचनम्                      |
| १प्र         | उक्तार्थे प्रमाणानि १४                |
| १६           | भेदसमर्थनम्                           |
| १७           | मायिमतानुवादः १६                      |
| १८           | मायिमतदूषणम् १६                       |
| १९           | भेदप्रतिपादकवाक्यानि                  |
| २०           | जगतः सत्यत्वसमर्थनम्                  |
| २१           | मायिमतनिन्दा २०                       |
| <b>२</b> २   | जगत्सत्यत्वे प्रमाणानि २१             |
| २३           | हरेरनुमानाद्यवेद्यत्वकथानम्           |
| २४           | भेदवाक्यस्याननुवादित्वव्युत्पादनम् ११ |
| २५           | मायिमतस्य बौद्धाभेदकथनम् २२           |
| २६           | मायिमतस्य दुष्टताव्युत्पादनम्         |

| विषयानु    | क्रमणिका <sup>-</sup>           | vii        |
|------------|---------------------------------|------------|
| 20         | बौद्धान्मायिनो हीनत्वकथनम्      | २३         |
| २८         | मायिनश्चोरत्वापादनम्            | २३         |
| 29         | मायिमते शास्त्रवैयर्थ्यकथनम्    | 28         |
| 30         | मायिनो उन्मत्तत्वव्युत्पादनम्   | २५         |
| <b>३</b> १ | ऐक्यवादस्यासुरमतत्वव्युत्पादनम् | २५         |
| 32         | सर्वज्ञाभिमतस्रोकोदाहरणम्       | २६         |
| 33         | मिथ्यावादिसङ्गनिषेधः            | <i>२७</i>  |
| 38         | गुरुलक्षणम्                     | <i>२७</i>  |
| ३४         | अवरगुरुस्वीकारनिषेधः            | 20         |
| ३६         | गुरुविचारः                      | २८         |
| ₹′9        | गुर्ववज्ञानेऽनर्थकथनम्          | २९         |
| ३८         | शिष्यस्वरूपकथनम्                | २९         |
| <b>३</b> ९ | हरिनिन्दाप्रायश्चित्तम्         | २९         |
| ४०         | योग्यादन्यगुरुनिषेधः            | ३०         |
| २ द्विती   | योऽध्यायः                       | <b>3</b> ? |
| ?          | वपनम्                           | ३१         |
| 2          | मृत्तिकाग्रहणम्                 | <b>३</b> १ |

| 3          | स्नानम् ३२                               |
|------------|--|
| 8          | देवादितर्पणम्                            |
| ¥          | जपः ३२                                   |
| ६          | आहारः                                    |
| છ          | आपस्तम्बानाम्                            |
| ς          | विरजाहोमप्रकारः                          |
| ९          | यजुर्वेदिसन्यासप्रकारः                   |
| १०         | सामवेदिसंन्यासप्रकारः                    |
| <b>?</b> ? | छन्धोगास्र्यसामशास्त्रिविशेषविधिः        |
| १२         | तोवकारसन्यासविधिः                        |
| १३         | अग्निमूर्तिध्यानम्                       |
| १४         | प्रैषोच्चारणप्रकारः                      |
| १प्र       | अनिरुद्धनामनिर्वचनम्४०                   |
| १६         | प्रद्युम्ननामनिर्वचनम्                   |
| १७         | सङ्कर्षणनामनिर्वचनम्                     |
| १८         | वासुदेवनामनिर्वचनम् ४१                   |
| १९         | अभयदानम्                                 |
| २०         | प्रैषोच्चारणानन्तरं कर्तव्यकर्मविवेकः ४२ |

| वि | षयानु     | क्रमणिका <sup>-</sup>      | ix |
|----|-----------|----------------------------|----|
|    | 28        | गुरूपसत्तिः                | '2 |
|    | <b>२२</b> | गुरुवन्दनम्                | /३ |
|    | २३        | प्रणवाद्युपदेशः            | /३ |
|    | २४        | हंससन्यासविधिः             | 8  |
|    | २४        | त्रिदण्डियतिक्रमः          | 8  |
|    | २६        | कुटीचकयतिऋमः               | 8  |
| 3  | तृती      | योऽध्यायः ४                | '६ |
|    | \$        | ब्रह्मचार्यादिसदाचारशिक्षा | द  |
|    | 2         | मलविसर्गः                  | ६  |
|    | 3         | पुरीषशौचे मृत्तिका         | છ  |
|    | 8         | मूत्रे मृत्तिकाविधिः       | છ  |
|    | ¥         | न्यासिनामापचमनम्४          | ડ  |
|    | ६         | दन्तधावनम्                 | ડ  |
|    | છ         | स्नानम्४                   | ٠, |
|    | ς         | ऊर्ध्वपुण्ड्धारणम्         | १० |
|    | ९         | ऊर्ध्वपुण्ड्धारणमन्त्रः    | १० |
|    | १०        | शङ्खचक्रधारणे मन्त्रः      | १० |

X

| <b>??</b>  | गोपीचन्दनमहिमा                |
|------------|-------------------------------|
| १२         | चक्रादिधारणप्रमाणानि          |
| १३         | ऊर्ध्वपुण्डाधारणे प्रत्यवायः  |
| १४         | तिर्यक्पुण्ड्निषेधः           |
| १प्र       | भस्मधारणम् ५२                 |
| १६         | भस्मधारिणां कुत्सितत्वम्      |
| १७         | त्रिपुण्ड्धृतेरासुरमतत्वम्    |
| १८         | मूलमन्त्रेण तर्पणम्           |
| १९         | तुलसीनिर्माल्यधारणम्          |
| २०         | तुलसीनिर्माल्यधृतौ प्रमाणम्५४ |
| <b>२</b> १ | जपार्थमासनम्                  |
| <b>२</b> २ | गुरुवन्दनपापनिरसनादि५४        |
| <b>२३</b>  | तत्वन्यासादि                  |
| २४         | जपः ५५                        |
| २५         | हंसव्यतिरिक्तानामर्ग्यादि ५५  |
| २६         | गायत्रीजपः                    |
| २७         | गुहस्थादीनां दिगुपस्थानम्     |
| २८         | यतीनां दिगुपस्थाननिषेधः       |

| विषयानु    | क्रमणिका <sup>-</sup>       | xi |
|------------|-----------------------------|----|
| <b>२</b> ९ | अष्टाक्षरादिजपः             | ५६ |
| <b>30</b>  | शास्त्र श्रवणव्याख्यादि     | ५६ |
| <b>3</b> ? | शान्तिपाठप्रकारः            | ५६ |
| <b>३</b> २ | कलशपूजाविधानम्              | १७ |
| 33         | शङ्खपूजा                    | १७ |
| 38         | पाद्यादिपात्राणि            | १७ |
| ЗХ         | पीठपूजाविधिः                | १७ |
| ३६         | स्वार्थपरार्थावाहनम्        | ተሪ |
| <b>३</b> ७ | आवरणपूजा                    | ተሪ |
| <b>३</b> ८ | धुपदीपौ                     | ५९ |
| <b>3</b> ९ | नैवेद्यम्                   | ५९ |
| ४०         | अनुयागविधिः                 | ६० |
| ४१         | धूपदीपनीराजनानि             | ६१ |
| ४२         | पूजाप्रमाणानि               | ६१ |
| ४३         | मोक्षसाधनकथनम्              | ६१ |
| ४४         | अन्ननैवेद्याभावे विशेषः     | ६२ |
| <b>የ</b> ሂ | भिक्षुकाणां माधुकरी वृत्तिः | ६२ |
| ४६         | षड भिक्षुकाः                | ६२ |

| ४७   | पञ्चविधभिक्षाः ६                | ?   |
|------|---------------------------------|-----|
| ४८   | भोजनम्                          | 3   |
| ४९   | भगवन्नैवेद्यमाहात्म्यम् ६       | 3   |
| χo   | विष्णवनर्पितभोजने दोषः          | 3   |
| प्रश | ब्रह्मपारस्तवमहिमा ६            | ३   |
| प्र२ | व्याधश्वशुरसंवादः ६             | 8   |
| χҙ   | प्राणाग्निहोत्रम्               | 4   |
| ४४   | प्राणाद्याहुतावङ्गुलिब्यवस्था ६ | 4   |
| ХX   | भोजनान्ते हस्तादिक्षालनम् ६     | દ્દ |
| प्र६ | उपस्थानं तर्पणं च               | દ્દ |
| प्र७ | वैश्वदेवविशेषः                  | દ્દ |
| ሂፍ   | सन्यासिप्राणाहुतिः              | દ્દ |
| प्र९ | भोजनान्तकर्तव्यम्               | ૭   |
| ६०   | स्वापकालः                       | ૭   |
| ६१   | कालसार्थक्यकरणम्                | ૭   |
| ६२   | एकादश्युपवासः                   | ૭   |
| ६३   | विष्णुपञ्चकोपवासः               | ሪ   |
| ६४   | विष्णुपञ्चकोपवासे वेधविचारः     | ሪ   |

| विषयानु    | क्रमणिका x                | iii        |
|------------|---------------------------|------------|
| ६५         | श्रवणाद्युपवासः           | S          |
| ६६         | हरिवासरः                  | 8          |
| ६७         | एकादश्युपवासमाहात्म्यम् ६ | १९         |
| ६८         | विद्धैकादशीवर्जनम् ६      | १९         |
| ६९         | श्रवणद्वादशी              | 90         |
| ७०         | चतुर्मास्यव्रतारम्भः      | 90         |
| ७१         | चातुर्मास्यकालाविधः       | 9१         |
| ७२         | चैत्रादिमासगणना           | 9१         |
| ७३         | अधिकमाससंसर्पे            | 9१         |
| ४७         | संसर्पाहस्पतीमासौ ७       | 9१         |
| ७४         | अधिमासः ७                 | <b>,</b> २ |
| ७६         | क्षौरदिनम्                | ,2         |
| ७७         | कृष्णाष्टमीव्रतम्         | , २        |
| ७८         | नवरात्र्यां व्यासपूजा     | ,2         |
| ७९         | भगवत्प्रार्थनम्           | 93         |
| <b>८</b> ० | शिष्यस्य अभिषेकप्रकारः    | 93         |
| ٦į         | व्याख्यानप्रकारः          | 8          |
| 52         | यतिनियमः                  | 8          |

| xi | V          |                                     | विषयानुऋमणिका |
|----|------------|-------------------------------------|---------------|
|    | <b>5</b> 3 | यतिनिषिद्धानि                       |               |
|    | ፍሄ         | सदाचारकथनम्                         | ७५            |
| 8  | चतुथ       | र्गिऽध्यायः                         | 99            |
|    | ?          | सन्यासग्रहणकालनिर्णयः               |               |
|    | 2          | अशक्तविषयकथनम्                      |               |
|    | 3          | ध्येयविष्णुस्वरूपकथनम्              | ৬১            |
|    | 8          | मरणानन्तरभाविमार्गस्मरणम्           |               |
|    | y          | देहादुत्ऋान्तिकथनम्                 |               |
|    | ६          | गृहस्थस्य मरणकाले कर्तव्यकथनम्      |               |
|    | છ          | भगवज्ज्ञानादेव मोक्षकथनम्           | <b>८</b> ०    |
|    | ς          | भाष्यकारकृतग्रन्थकथनम्              | <b>८</b> ०    |
|    | ९          | गुहस्थादिदेहदहनकथनम्                | <b>८</b> ०    |
|    | १०         | यतिदेहस्य वृन्दावनकरणकथनम्          | <b>८</b> ०    |
|    | <b>??</b>  | वृन्दावनस्थभगवत्पूजाविधानम्         | <b>८</b> १    |
|    | १२         | ब्राह्मणाराधनम्                     | <b>८</b> १    |
|    | १३         | सन्यासिमरणे अलङ्कारिकब्राह्मणभोजनम् | <b>८</b> १    |
|    | <b>१</b> ४ | वृन्दावनकरणे फलम्                   |               |

| विषयाः   | नुक्रमणिका                                   | XV   |
|----------|--|------|
| १प्र     | अन्तिममङ्गळम्                                | . ८२ |
| १६       | आदग्नासैत्यादिश्रुत्यर्थः                    | . ८२ |
| A भग     | वत्पादकृता सन्न्यासपद्धतिः                   | 68   |
| В भग     | वत्पादकृतः प्रणवकल्पः                        | ८६   |
| С श्री   | विष्णुतीर्थानां परिचयः                       | ८९   |
| <b>१</b> | ब्रह्माण्डपुराणे रजतपीठपुरमाहात्म्ये         | . ८९ |
| 2        | मध्वविजये                                    | . ८९ |
|          | २.१ चतुर्थसर्गे                              | . ८९ |
|          | २.२ पञ्चदशसर्गे                              | . ९० |
| 3        | सम्प्रदायपद्धतौ                              | . ९२ |
| 8        | सरसभारतीविलासे                               | . ९३ |
| ¥        | तीर्थप्रबन्धे                                | . ९४ |
| ६        | चरमझोकाः                                     | . ९४ |
| છ        | कस्मिंश्चित् प्राचीनकोशे                     | . ९४ |
| ፍ        | स्तोत्रम्                                    | . ९४ |
| 9        | वैश्वनाथिनारायणाचार्याः सदाचारस्मृतिटीकायाम् | . ९५ |

# Acknowledgements

• Vidwān Sri Tirumala Kulakarni Acārya, for providing the baraha encoded text source of Sannyāsapaddhati.

Srinidhi

#### Overview

#### Sannyāsapaddhati

भगवत्पादकृतप्रणवकल्पसन्न्यासपद्धत्यादौ कार्त्स्योंन कर्मसम्बन्धिधर्माणां स्फुटाप्रति-भानात् भगवत्पादाज्ञामकुटं शिरसि परमादरेण धृत्वा प्रणवकल्पादिविवृतिरूपं श्री-विष्णुतीर्थीयाख्यमध्यायचतुष्टयात्मकं ग्रन्थं निर्मम इत्याम्नायः।

श्रीसुरोत्तमतीर्थाः श्रीविष्णुतीर्थीयव्याख्याने

#### Author profile

Aśrama nāma Śrī Viṣṇu Tīrtha

Guru Śrī Ānanda Tīrtha

Disciples Śrī Bādarāyaṇa Tīrtha

Śrī Aniruddha Tīrtha

Works Sannyāsapaddhati

Pīṭha Sri Sode Mutt

Sri Subrahmanya Mutt

xviii Overview

# अध्यायः १

# प्रथमोऽध्यायः

आनन्दतीर्थं विभुमप्रमेयं विद्यासुपूर्णं परतः परेशम्।
नारायणं दैवतवन्द्यपादमनन्तभोगे शयितं नमामि॥१॥
श्यामं नितम्बार्पिततन्तुमेखलं विद्यानिधिं ज्ञानमहागुणाद्यम्।
निदेशितज्ञानमहासुमार्गं व्यासं मुनीनामहमानतोऽस्मि॥२॥
समस्तवेदान् मुखतः समुद्गिरत्तुरङ्गशीर्षं वपुरादिदेवः।
बभ्रे तु यो ब्रह्मनुताय तस्मै ज्ञानप्रदोग्भ्रे सततं नमामि॥३॥
तथा च यः क्रोधवशादिदैत्यैर्मुग्धेषु लोकेषु बभार रूपम्।
वायुस्तुरीयाश्रमयुक् तमग्यं मध्वं महान्तं प्रणतोऽस्मि तं प्रभुम्॥४॥
नत्वाऽथ देवान् यतिकर्म सम्यग्वक्ष्ये मूलादान्तमीशप्रसादात्।
गुरोश्च विद्याधिपतेश्च पञ्चरात्रोक्तमार्गेण तु सङ्गृहेण॥५॥
श्रुत्वा गुरोः सम्यगेवार्थमेतं वक्ष्याम्यतः कर्मणि नात्र शङ्का।
शब्दादिकं को हि विज्ञातुमेव शक्तो ह्युते विष्णुवायू प्रभूतौ॥६॥

#### १ सन्यासग्रहणकालकथनम्

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो विरिक्तमान्।
यदा भवित तर्ह्यांव सन्न्यसेदिवचारयन्॥७॥
यदहरेव विरजेदिति वाक्यं हि तत्रगम्।
ब्रह्मचर्यं समाप्याथ गृही भूत्वा वनी भवेत्॥८॥
प्रव्रजेदन्यथा वापि ब्रह्मचर्याद्यतिर्भवेत्।
गृहाद्वनाद्वेति बह्चचः प्रमाणं श्रुतयोऽत्र हि ॥९॥
अधिकारिणस्तथान्ये च सन्ति केचित् प्रमादिनः।
भक्ता हरौ विरक्ताश्च महानाम्न्यादिसंयुताः॥१०॥
असंयुतो वा तीर्थानां स्नातको वान्य एव वा।
उत्सन्नाग्निः पूर्वमेव हीनाग्निश्चापि सन्यसेत्॥११॥
अथ व्रती वेति जगौ श्रुतिरत्र सनातनी।
एवमेषामनुक्तानामवद्याङ्गाव्यमञ्जसा॥१२॥

१ 'यदहरेव विरजेत् तदहरेव प्रव्रजेत् ' - जाबालोपनिषत् ४.१ व्याताभाष्ये (५.२) -

<sup>&#</sup>x27;सन्न्यासस्तु तुरीयो यो निष्क्रियाख्यः सधर्मकः। न तस्मादुत्तमो धर्मो लोके कश्चन विद्यते॥

तङ्ककोऽपि हि यङ्गच्छेत् तङ्गृहस्थो न धार्मिकः। मङ्गिक्ष विरक्तिस्तदिधकारो निगद्यते। यदाऽधिकारो भवति ब्रह्मचार्यपि प्रव्रजेत्॥' इति नारदीये॥

<sup>&#</sup>x27;ब्रह्मचार्यपि प्रव्रजेत्' 'यदहरेव विरजेत्' इति च

## २ अधिकारिनिरूपणम्

अधिकारं ब्रवीम्यस्मिन्नध्याये तु गुरोरिप।
नाधिकारे विशेषः स्यात् प्रायशो गुरुशिष्ययोः॥१३॥
भक्तो विष्णौ त्रिवारं वा वेदाध्याय्यधमः स्मृतः।

युक्तः शमादिना तेन पूर्वोक्तेन च मध्यमः॥१४॥

आब्रह्मतृणपर्यन्तमसारं चाप्यनित्यकम्। सारत्वं नाम केनापि विष्णोरन्यस्य न क्वचित्॥१५॥

क्षणे क्षणेऽन्यथाभावादिनित्यं च सदा जगत्। विष्णुरेव सुनित्यो हि सर्वस्माच सुसारकः॥१६॥

इति ज्ञात्वा भवग्नस्तु विष्णोः पादाब्जसंश्रयः। निर्विण्णश्चान्यत्र सदा पूर्वोक्तेनापि संयुतः॥१७॥

उत्तमस्तत्त्ववित्त्वं वा जिज्ञासुत्वमपेक्षितम्। उक्तं तत्र प्रमाणं तु भाष्यकारेण संविदा॥१८॥

#### ३ तत्र प्रमाणकथनम्

'मन्दमध्योत्तमत्वेन त्रिविधा ह्यधिकारिणः। तत्र मन्दा मनुष्येषु य उत्तमगणा मताः॥१९॥

मध्यमा ऋषिगन्धर्वा देवास्तत्रोत्तमा मताः। इति जातिकृतो भेदस्तथान्यो गुणपूर्वकः॥ २०॥

भक्तिमान् परमे विष्णौ यस्त्वध्ययनवान्नरः। अधमः श्रमादिसंयुक्तो मध्यमः स उदाहतः॥ २१॥

आब्रह्म स्तम्बपर्यन्तमसारं चाप्यनित्यकम्। विज्ञाय जातवैराग्यो विष्णुपादैकसंश्रयः॥ २२॥ स उत्तमोऽधिकारी स्यात् सन्न्यस्ताखिलकर्मवान्।'३ इति प्रसादाद्विष्णोस्तु ब्रह्मणो भवति स्फुटम्॥ २३॥

तत्र विष्णुं प्रकोप्याशु सङ्गतिं नैव चाप्नुयात्। तमश्चोग्रं व्रजत्याशु नात्र कार्या विचारणा॥ २४॥

पुमान् कल्पतरुं यत्त आरुह्य फलविस्तृतम्। पुष्पादीनां यतन्नज्ञः पतेत्तस्माद्यथा ह्यधः॥ २५॥

# ४ प्रथमवेदानध्ययने दोषवर्णनम्

तथा कल्पतरुं वेदमर्थपत्रं सुदुर्गमम्। कामपल्लवसंयुक्तं धर्मपुष्पं सनातनम्॥ २६॥

मोक्षेकफलसंयुक्तमधीत्य न यजन् हरिम्। पतत्येव विशेषेण विद्यमाने गुरौ परे॥२७॥

सर्वज्ञेन लभन् ज्ञानं पतत्येव तमो ध्रुवम्। जनित्वा त्रिषु वर्णेषु नाधीयाद्यः श्रुतिं स तु॥ २८॥

उच्यते शूद्र एवेति ततोऽधीयाच्छ्नतिं पराम्। अधीत्य वेदं येनार्थो न ज्ञातः प्रायशः स हि॥२९॥

फलवान्न भवेदूर्थ्वा गतिस्तेन न चाप्यते। यथा धनी न भुज्यते तथा सोऽपि स्मृतः पुमान्॥ ३०॥

<sup>&</sup>lt;sup>३</sup>सूत्रभाष्योदाहृतभागवततन्त्रवचनम् (१.१.१) ४भागवततात्पर्योदाहृतं (१.१.३) ब्रह्माण्डवचनम् -

<sup>&#</sup>x27;धर्मपुष्पस्त्वर्थपत्रः कामपल्लवसंयुतः। महामोक्षफलो वृक्षो वेदोऽयं समुदीरितः॥'

## प्र मनुष्यस्य प्रयोजनकथनम्

तथा चोक्तं भगवता व्यासेनाचिन्त्यकर्मणा।
कर्तुं स्वधर्मं यत्नेन परित्यक्तं च पातकम्॥ ३१॥
जन्मान्तरसहस्रेषु मानुषत्वं हि लभ्यते ।
तल्लब्ध्वापीह यो धर्मं न करोति स वश्चितः॥ ३२॥

जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः। यत्र कुत्रापि भद्रेषु ब्राह्मणेषूपजायते॥ ३३॥

## ६ विष्णुभक्तेः प्राधान्यकथनम्

जन्मान्तरसहस्रेषु तपोज्ञानसमाधिभिः। नराणां क्षीणपापानां (कृष्णे) विष्णोर्भिक्तः प्रजायते॥ ३४॥

इति भक्तिं हरौ कर्तुं पुंसां सर्वप्रकारतः। प्रश्नंसियत्वाऽनिन्ध्यापि ब्रवीति भगवानलम्॥ ३५॥

सत्यमेव च तङ्गक्तेर्भवो भावाद्धरौ सदा। ग्रुध्यग्नुद्धी व्यर्थतां च प्राह वेदाधिपः स्वयम्॥ ३६॥

जन्मनोऽ(ना) र्चादिहीनस्य पुंसो विष्णोः परात्मनः। श्वपचोऽपि महाराज विष्णुभक्तो द्विजाधिकः। विष्णुभिक्तिविहीनो यो यतिश्च श्वपचाधमः॥३७॥

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्च दिनान्यपि। वृथा भक्तिविहीनस्य कल्पकोटिशतं त्वपि ॥ ३८॥

५कृष्णामृतमहार्णवे (२२७) -

जीवितं विष्णुभक्तस्य वरं पञ्च दिनान्यपि। न तु कल्पसहस्रैस्तु भिक्तहीनस्य केशवे॥

'धर्मा भवत्यधर्माऽपि कृतो भक्तैस्तवाच्युत। पापं भवति धर्मोऽपि यो न भक्तैः कृतो हरे'६॥३९॥

यो जातो नार्चयेद्विष्णुं न स्मरेन्न च कीर्तयेत्। किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा ॥ ४०॥

इत्यन्यतोऽस्य भगवान् गतिं सम्यहिनषेधति। संसारिणः कथादिभ्यो हरेर्मुक्तिप्रदस्य हि॥ ४१॥

संसारसिन्धुमितदुस्तरमृत्तितीर्षो र्नान्यः स्रवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य। लीलाकथारसिनषेवणमन्तरेण पुंसो भवेद्विविधदुःखसमर्दितस्य॥ ४२॥

'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्मन्ति यं सूरयः। तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो(ऽ)मृषा धाम्मा स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि '८॥ ४३॥

'धर्मः प्रोज्जि (त्थि) तकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्। श्रीमद्वागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्' ॥४४॥

'निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्। पिबत भागवतं रसमालयं महुरहो रसिका भुवि भावुकाः' १९॥४५॥

किं तेन जातमात्रेण भूभारेणान्नशत्रुणा। यो जातो नार्चयेद्विष्णुं न स्मरेन्न च कीर्तयेत्॥

८भागवते १.१.१

९भागवते १.१.२

<sup>&</sup>lt;sup>१॰</sup>भागवते १.१.३

व्यासाख्यं हि परं ब्रह्म ग्रन्थादौ धीमहीति यत्। विक्त तस्माद् ब्रह्मणो हि कार्यं ध्यानादि सर्वदा॥ ४६॥

पुरुषेण सृतेर्मुक्त्यै नान्यथा मुक्तिमाप्नुते। जन्मादिकारणस्यास्य परब्रह्मण एव हि॥४७॥

विना मुख्यप्रसादेन मोक्षो नास्त्येव सर्वथा। इति ज्ञापयितुं सोऽपि धीमहीत्यब्रवीत् स्वयम्॥४८॥

बन्धिमध्यात्वतो बन्धिमध्यात्वज्ञप्तितोऽस्य हि। स्यान्मुक्तिर्न प्रसादेन प्राप्तायामिति वेदराट्॥४९॥

जन्मादेर्नैव मिथ्यात्वमिति वक्तुं स एव हि। स्वेन धाम्नैव तद्गद्ग निरस्तकुहकं परम्॥ ५०॥

इति प्राह परा धर्माः शुद्धा भागवतिप्रयाः। अन्येच्छावर्जिनो (तो) विष्णोर्विना प्रीतिं हि मोक्षदाः॥ ५१॥

सन्ति भागवते नित्यमिति वक्कं च स स्वयम्। अन्येष्वेतादृशा धर्मा न सन्तीति च वेदवित्॥ ५२॥

किं वा परैरिति प्राह श्रोतव्यादि तथास्य च। श्रीमद्भागवतस्याह सद्य इत्यादिना हरिः॥ ५३॥

सर्वस्य सुकृतस्याद्धा सुफलं त्वीश्वरज्ञता। इति प्रतीयते चात्र परिचर्या तथा हरेः॥५४॥

वैष्णवानां तु शास्त्राणां तत्वमार्गे प्रवर्तताम्। अस्योपलक्षणत्वाच्च श्रीमद्भागवतस्य हि॥५५॥

तेषामिप सदाभ्यासः कार्य एव न संग्रयः। सारो वृक्षरसो यस्तत्समाहारं फलं विदुः॥ ५६॥

सम्यक्तस्य समाहारः पक्कमित्युच्यते सुरैः।

तद्वद्वेदाख्यवृक्षस्य फलं भागवतं विदुः॥ ५७॥

तदुक्तोऽर्यो (त्यो यो) रसः प्रोक्तो हरेरेव कथाः शुभाः। प्रोच्यन्ते तस्य भक्तानामपि नान्यस्य कस्यचित॥ ५८॥

अनुग्रहाय लोकस्य पिबतेत्यब्रवीद्वचः। श्रणुतेत्यर्थतो यावज्जन्मनो मरणं सदा॥५९॥

अहो इत्यवदद्यस्माच्छ्रतिरस्याः कथा मताः। हद्याश्वातीव भक्तानां नाभक्तानां कदाचन॥६०॥

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन श्रृणुयात् कथयेत् कथाः। मुमुक्षुश्च बुभुक्षुश्च पापानां शान्तये तथा॥ ६१॥

तथा विक्त श्रुतिः सम्यगज्ञस्य विफलं हरेः। भगवांस्त्वेनमज्ञातो न भोजयित वेदवाक्॥ ६२॥

अनुक्तेऽन्यस्य कर्माणि कृतान्यपि ह वा यदि। अनेवंवित् पुण्यकर्मा करोत्यस्यां ततस्तु तत् ॥६३॥

क्षीयते वै ततो विष्णुमाश्रयं समुपास्य तम्। य उपास्ते हरिं लोकं सोऽस्मात्कामानवाप्नुते॥६४॥

तस्य विष्णोः प्रसादेन जगादान्या श्रुतिस्तथा। नान्यः पन्थास्ततो विष्णोः प्रसादादेव मुच्यते॥ ६५॥

प्रसादोऽपि ज्ञानिनः स्यान्मुख्यो ज्ञानं च तत्त्वतः। आगमान् वैष्णवान् शुद्धान् सम्यगभ्यासतो भवेत्॥६६॥

अभ्यासश्चाश्रमे सम्यक् तुरीये सर्वदा भवेत्। विरक्तः स्यन्न्यसेत् तस्मान्मोक्षेप्सुइशर्मवित्तये॥ ६७॥

अनादिकालतः सोऽयं जीवः संसरति भ्रमन्। नरके गर्भवासे च स्वर्गे नानाशरीरगः॥६८॥ दुःखं स्यात् सुबहानौ हि तस्मात् स्वर्गेऽपि मोदतः। सुदुःखं स्यात्पतानीति कर्मान्ते स पतेत् ततः॥६९॥

ततो गर्भमवाप्नोति कललादीनथाप्नुयात्। विष्ठामूत्रभरे पात्रे तिष्ठति स्म सुबद्धवत्॥ ७०॥

जान्वोस्तु नेत्रके न्यस्य तयोरुभयतः करे। पादयोरन्तरे हस्तौ पाष्णर्योर्वृषणमन्तरे॥ ७१॥

मृदुदेहो मातृभुक्तैः कटुकोष्णादिभिः सदा। दह्यते चान्त्रमध्यस्थः कृमिभिश्च सुतुद्यते॥ ७२॥

निवारणायात्यशक्त आर्तो निश्चलित ह्यलम्। तत्र कश्चित्पुमान् ज्ञानं प्राप्य पश्यित वै हरिम्॥ ७३॥

शङ्खचक्रगदापद्मधरं कौशेयवाससम्। नानाभरणभूषाङ्गमुद्यदादित्यवर्चसम्॥ ७४॥

जन्मान्तराणि सञ्चानन् नानायोनिषु दुःखितः। तस्य विष्णोः प्रसादात्तजन्मसंक्षयमिच्छति॥ ७५॥

इतो गर्ता (र्भा) द्विनिर्गम्य तह्यींव सुखदं हरिम्। मोक्षदं तत्त्वमार्गेण सम्पूज्य विधिवत्पुभुम्॥ ७६॥

नैव प्राप्स्याम्यहं (थो) वासं गर्भे चेति स्मरेत्स तु। जननादामृतिं यत्नाच्छुत्वा शास्त्रं तथा कथाम्॥ ७७॥

विष्णुसक्तमतिर्मोक्षं प्राप्नुयामिति चैकदा। सूतिवातेन तस्मात्तु जायते तस्य वै स्मृतिम्॥ ७८॥

विधुनोति हरेर्माया दैवी सर्वतिरस्करी। मञका मत्कुणाश्चैनं प्रभक्षन्ति निवारिताः॥ ७९॥

क्षुत्तुङ्भ्यामर्दितः सोऽथ विष्ठामूत्रपरिस्नृतः।

रुवन् प्रभक्षन् विष्ठादि शेते लब्धनिरूपितः॥ ८०॥

#### ७ पुरुषपापप्रवृत्तिकथनम्

यौवने विषयी कामी सर्वश्रत्नुविवर्जितः। यतमानो लभन् सर्वान् धावतीतस्ततस्सदा॥ ८१॥

ततश्चौर्यादिकं कुर्वन् बाध्यते तत्रतत्र तु। वार्धक्ये पुत्रभार्याभिरनादृत्य प्रभक्षति॥ ८२॥

दत्तं वित्तादिहीनस्तु पुरुषार्थे सुशोचित । बाल्ये मात्रादिभिर्धर्मान्न करोति निवारितः॥ ८३॥

यौवने चातिसक्तस्मन् वार्धक्येऽशक्त एव च। पञ्चयज्ञांस्तथा सन्ध्यामुपवासादिकं तथा॥ ८४॥

अकुर्वस्तु क्रम्रणैव कासश्वासादिसंयुतः। विष्ठामूत्रादिभिर्लिप्तः पश्यति स्म महाभटान्॥ ८५॥

#### द यमदृतवशत्वकथनम्

दृष्ट्वा तान्यमदूतांस्तु भीतो मात्रादिकानथ। आह्वयन् बहुञोऽधीरः शकृन्मूत्रं च मुञ्जति॥८६॥

कश्चित्तत्र वशी धीरो भगवन्तं स्मरेहृढम्। तस्य तेभ्यो भयं नास्ति भक्तत्वादच्युतस्य हि॥८७॥

रोरूयत्सु स्वकेष्वन्यः कथाञ्चित्प्रैति दुःखितः। तं याम्यास्तु गळे बध्वा पापिनं भक्तिवर्जितम्॥८८॥

कर्षन्ति निर्जने मार्गे विवत्तप्तवाव्हुके। निच्छाये शर्करादौश्च संयुक्ते गमयन्ति च॥८९॥ प्रायः कलावन्यजत्वाद्दत्तं पुत्रादिबन्धुभिः। न लभ्यते विष्णुभक्तेर्हीनत्वाद्दातृभुञ्चतोः॥ ९०॥

# ९ (यममार्ग) नरकप्रवेशकथनम्

योजनानां सहस्राणि नवतिर्नव चाध्वनः। द्विमुहूर्ताद्दिनाद्वापि दशाहाद्वत्सरादियात्॥ ९१॥

ततो यमपुरीं प्राप्य यमं तत्र प्रपञ्यति। नानाकृतिं भीषयन्तं दृष्ट्वा स्थाणूपमो भवेत्॥ ९२॥

शंसत्सु स्वानि कर्माणि तर्जियत्वा मुखे बलात्। अभिगर्जित्सिंहमध्यगतसारङ्गवद्भवेत्॥९३॥

ततो यमभटैराज्ञाकर्तृभिर्नरकं प्रति। नीयते तत्र भुङ्के हि दुःखं संवत्सरान् बहून्॥९४॥

#### १० यातनाकथनम्

एकत्राङ्गारनिचये जानुदग्नः सवैशसः। पदेपदे नञ्चमानपादो धावत्यृतेऽस्थिभिः॥९५॥

निर्गच्छन्तं ततो याम्या वारयन्त्यनिशं तटात्। अन्यज्ज्वलत्ता (अन्यज्जलं ता) म्रतलमधरस्थेन वनिआ॥९६॥

तस्मिन् बध्वा हस्तपादौ प्रक्षिपन्ति ततो बहु। चक्रवङ्गमते पापी दह्यमानशरीरकः॥९७॥

असिधारासमान् वृक्षान् कर्षन्त्यारोप्य चान्यतः। दूतैस्तु भिन्नसर्वाङ्गः स्रवद्रकस्तु रौति च॥९८॥

अन्यत्र पात्य तं याम्याः कुर्वन्ति तिलञाः सदा।

अन्यत्र मांसविष्ठादिगर्ते पात्य च तद्कलात्॥ ९९॥ भोजयन्ति तथान्यत्र स्वमांसानि च काम्यतः। भोजयेयुस्तथान्यत्र कुम्भे तैलं वसासमम्॥ १००॥

मिश्रितं जन्तुचू (पु) र्णेन त्रपुणा च समन्वितम्। क्वाथयित्वा नरं तत्र विसृजन्त्युग्रपौरुषाः॥१०१॥

अवाङ्मुखं ततः सम्यक् क्वाथयन्ति च किङ्कराः। एवमेतेषु तप्तानामसवो नापयन्ति हि॥१०२॥

यावत्पापफलं तेषां तदन्तेऽतो व्रजन्ति च। एवं मार्गज्ञापनाय संक्षेपेण मयोदिताः॥ ०३॥

यातना अपि कोट्यंशो दुखस्यात्रोदितो न हि। शिष्टेन तेन पापेन नानाकुत्सितयोनिषु॥१०४॥

जायतेऽतः पुनः पापं कृत्वा नरकमेति च। एवं जन्मस्वनन्तेषु क्लिक्यमानः पुनः पुनः॥१०५॥

नाविन्दत हरिं मोक्षसुखदं तत्वविद्यया। अहो पत्रयत मुग्धत्वं लोकस्यात्महनोऽस्य हि॥१०६॥

# ११ तमोनिरूपणम्

गङ्गायां तृषितो दूरं मृगतृष्णां हि गच्छति। यथृवं हृदि संस्थं तं हरिं ध्यानादिकर्मभिः॥१०७॥

अपहाया (अमहत्या) स्य कर्माणि कृत्वा संसारतापितः। अन्ततस्तम एवासौ याति विष्णोरनादरात्॥ १०८॥

तमस्संज्ञं च नरकं नित्यं विविधमीरितम्। तामिस्रमन्दतामिस्रं तत्रान्धं त्रिविधं मतम्॥ १०९॥ ऊर्ध्वमध्येऽधरं चापि श्रवणादेव मारकम्। विस्तारतोऽधरं तत्र पूर्वं राजा मृतः किल॥११०॥

# १२ तमस्माधननिरूपणम्

तस्मात्स भारते कृष्णो धर्मपुत्राय नोक्तवान्। तत्रैते निपतन्त्यशु विष्णोरन्यं समं ब्रुवन्॥ १११॥

अधिकं च स्वतन्त्रं वा विष्णोश्चैवास्वतन्त्रताम्। सार्वज्ञाद्यगुणत्वं च सत्त्वादीनां च युक्तताम्॥ ११२॥

दोषित्वमथ निन्द्यत्वं शुद्धचैतन्यरूपिणः। अवतारेषु भिन्नत्वं दुःखित्वं शक्तिहीनताम्॥११३॥

अज्ञत्वं चैव बद्धत्वं भिन्नत्वं जनितां तथा। वृद्धिं च लोकवत्तस्य देहत्यागं ब्रुवं (वदं)स्तथा॥११४॥

अवतारव्यत्ययं च सर्वब्रह्मत्वमेव च। जीवब्रह्मत्वमथ वा हरेर्जीवत्वमेव च॥११५॥

जीवेशयोरभिन्नत्वं भिन्नत्वं धर्मधर्मिणोः। हरौ रमायां च वदन् ब्रह्मादिसमतां मिथः॥ ११६॥

विनिन्दन् हरिभक्तांस्तु ह्यनिन्दन्नुक्तलक्षणान्। वेदान्विनिन्दंश्च तथा गुरुंस्तत्त्वप्रदानिप॥११७॥

ईरितेषु तु धर्मेषु नास्तिकां प्रबुवन्नपि। औदासीन्यात्तथा द्वेषात्प्रमादाच्छक्तितोऽपि॥११८॥

उत्साहात् कर्मणो दैवाच्छठादासुरभावतः। आग्रहाद्वैरतो वापि मात्सर्यादन्यकामतः॥ ११९॥

## १३ तमसि दुः खानुभवप्रकारः

लब्धे गुरौ सर्वविदि दुर्लभं परमं पदम्। त एते सर्व एवाञ श्रोत्रादीन्द्रियपञ्चभिः॥१२०॥

स्वरूपभृतैः शब्दादीन् गोररूपाननेकधा। अनन्तब्रह्मणां कालान् भुञ्जते परितापिताः॥१२१॥

यथा मुक्तः सुखं भुड्के निजभूतेन्द्रियैःसदा। परमानन्दरूपः सन्ननन्तब्रह्मणां पदे॥१२२॥

एवं दुःखस्वरूपत्वं हरिद्वेषात् समागताः। तत्रापि द्वेषरूपास्ते निवसन्ति परेशितुः॥१२३॥

मध्योर्ध्वयोस्तु तामिस्रे क्रमाद्दुःखाल्पकेषु हि। वसन्ति द्वेषदार्द्धस्य क्रमादल्पत्वहेतुतः॥१२४॥

# १४ तमःपतितानुशोचनम्

पुरा तदापि चाल्पत्वमपेक्ष्याधरमेव तु। एषोऽर्थः सर्वशास्त्रेषु तत्र तत्र च गीयते॥१२५॥

अनुग्रहाय देवेन संसारपरितापिनाम्। नराणां सक्तचित्तानां विरक्त्या शर्मवित्तये॥ १२६॥

हरिसम्भजनायापि ज्ञानलाभाय विद्यया। धिङ्मां योऽहं शुभं कर्म जीवन्नाकरवं क्वचित्। अकार्षं हि सदा पापं हा भयं महदुत्थितम्॥१२७॥

# १५ उक्तार्थे प्रमाणानि

अन्धः तमः प्रविज्ञन्ति येऽविद्यामुपासते।

१६. भेदसमर्थनम् १५

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥१२८॥

अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याधिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥१२९॥

इत्यादीनि तु वाक्यानि प्रमाणं तत्र सर्वज्ञः। अविद्योपासको ज्ञेयस्त्विवद्याया अदूषकः। विद्यारतः श्रुतिश्वाह यस्तद्वेदोभयं सह॥१३०॥

अबुधो (द्धो) ज्ञानिसङ्गावे न जानन्ति हरिः परम्। ये ते त्वात्पहनो विष्णुं परं नास्तीति वादिनः॥ १३१॥

भगवत्स्मरणस्यावस्यकत्वकथनम्। विष्णुपूजारतस्याह यमो नरकगीनताम्। पुराणे वैष्णवे तांश्च स्लोकान्वक्ष्यामि सादरम्॥१३२॥

वपुषोऽन्ते ततो यान्ति यातनास्तत्प्रचोदिताः। यातनाभ्यः परिभ्रष्टा देवाद्यास्त्वथ योनिषु॥१३३॥

जन्तवः परिवर्तन्तं शास्त्राणामेष निर्णयः। यथा विष्णुमृते नान्यः त्राता संसारसागरे॥१३४॥

मया चैतद्यथान्यायं सम्यग्वत्स तवोदितम्। किङ्करा दण्डपाञ्चा वा न यमो न च यातनाः॥ १३५॥

प्रभवन्तीह यस्यात्मा केशवालम्बनः सदा। मा ब्रूत मातस्तातेति मरणे समुपस्थिते॥१३६॥ आहूताविप तौ तत्र किं कुर्वाते हरिं विना।

#### १६ भेदसमर्थनम्

इति विष्णुं परं सन्तं सर्वज्ञं सर्वनेतृकम्॥ १३७॥

स्वतन्त्रं सर्वकर्तारं सर्वदोषविवर्जितम्। सुखज्ञानैकरूपं तं गुणसर्वस्वबृंहितम्॥ १३८॥

पूर्णं सर्वगते वेदैरेवं वेद्यं सनातनैः। अज्ञादल्पाज्जीवसङ्गादनाथाद्दोषसंयुतात्॥ १३९॥

अस्वतन्त्रादल्पकर्तुर्दुःखाज्ञानस्वरुपिणः। अभिन्नं हि गुणान् सर्वानपहाय तथान्यगान्॥१४०॥

#### १७ मायिमतानुवादः

वदत्येवं ततो मायी पुराणेऽस्मिंस्तथैव च। एकत्वं भण्यते वेदे चैकमेवाद्वितीयकम्॥१४१॥

सर्वं च खिल्वदं ब्रह्म तद्योऽहं ब्रह्म वेद च। इंद्रं मित्रं च स ब्रह्मा वाक्येष्वेतेषु भिन्नता॥१४२॥

प्रतीयते ततस्तस्य मोक्षः प्रीत्यैव नान्यथा। हरेरिति वचो नैव गटते भेदवेदनात्॥१४३॥

जीवात्मनो भवेन्मोक्षस्तदा हीदं निवर्तते। ज्ञेयज्ञानज्ञातृहीनं सदा ब्रह्मावतिष्ठते॥१४४॥

## १८ मायिमतदूषणम्

इति पक्षो न संसत्सु भासते परमस्य हि। सर्वज्ञत्वादिकं रूपं जीवस्याल्पज्ञतादिकम्॥१४५॥

ब्रह्मणःसर्ववित्त्वदि विना नास्त्येव रूपिता। तारतम्येन जीवस्य स्वल्पज्ञत्वादृतेऽपि च॥१४६॥

न रूपमत ऐक्यं तु तयोरेव विधीयते ।

सर्वज्ञाल्पज्ञतादीनां विरोधाच्च परस्परम्॥१४७॥

गुणहानौ यतो रूपहानिरेव भविष्यति।

पहानौ तयोः सम्यगैकां शशनृश्रृङ्गयोः॥१४८॥

पितो (?) श्वैक्यं न युज्येन चित्पञ्चज्ञत्वमेव च। ज्ञातृज्ञेयज्ञानहीनज्ञत्वभावात् कथञ्चन॥१४९॥

यथा रजनिपूतत्वं शङ्खशुक्रत्वमेव च। विहाय वस्तुनोरैक्यं नानुभूतं तु केनचित्॥१५०॥

ज्ञातृज्ञानज्ञेयहीनं ज्ञून्यमेव न चापरम्। यथा रक्षकरक्ष्यादि विना रक्षा न विद्यते॥१५१॥

वाक्यार्थश्चान्यथैवात्र दृश्यते ह्यविरोधतः। यदधीनमिदं सर्वं यतः सृष्टमिदं जगत्॥१५२॥

तस्मात्तदिति सम्प्रोक्तं विद्धद्भिर्वेदपारगैः। अधिकस्य समस्यापि स्वतन्त्रस्यापि वर्जनात्॥१५३॥

एक एवाद्वितीयोऽसौ न शास्यजनवर्जनात्। अन्तर्यामिणमीशेशमपेक्ष्याहं त्वमित्यपि॥१५४॥

सर्वशब्दाः प्रयुज्यन्ते सित भेदेऽपि वस्तुषु। अन्तर्यामिस्वरूपेण ब्रह्मरुद्राद्यभिन्नता। न तु जीवस्वरूपेण जीवा भिन्ना यतो हरेः॥१५५॥

विशेषाभेदवचनं सन्निधानविशेषतः। सन्निधानं तु तत्प्रोक्तं सामर्ध्यव्यञ्चनं हरेः। स्वामित्वं तु हरेरेवं मुख्यमन्यस्य भृत्यता॥१५६॥

यमिन्द्रमाहुर्वरुणं यमाहुर्यं मित्रमाहुर्यमु सत्यमाहुः। यो देवानां देवतमस्तवोजा तस्मै त्वा तेभ्यस्त्वा॥१५७॥ स प्रथमः सन्कृतिर्विश्वकर्मा स प्रथमो मित्रो वरुणो अग्निः। स प्रथमो बृहस्पतिः श्विकित्वां तस्मा इन्द्राय सुतमाजुहोमि॥१५८॥

अन्तर्याम्यदिधैवादिष्वन्तरस्तूपपत्तितः। असर्वः सर्वे इव च यः पृथिव्यां तथाधिकः॥१५९॥

परमं ब्रह्मविद्भह्म पूर्णो भवति नान्यथा। जातिजीवादिधातोस्तु जीवोऽपि ब्रह्म भण्यते॥१६०॥

#### १९ भेदप्रतिपादकवाक्यानि

उत्तमत्वेन देवानां मध्ये प्रोक्तो यतस्ततः। तस्मै तेभ्यश्चेति पृथगुक्तेर्जीवपरौ सदा॥१६१॥

भिन्नौ नो चेत्पृथक् सैषा न वदेत्तत्त्ववादिनि। पदेन प्रथमेनासावद्य इत्येव चागतः॥१६२॥

न चेत्सुव्यर्थता तस्य स्थितस्यादौ प्रतिप्रति। तस्मान्नामानि सर्वाणि तस्यैवेति प्रतीयते॥ १६३॥

नामानि विश्वान्यभि न यो देवानां च नामधाः। अतोऽपरे वराश्चैव तदीयाश्चापि सर्वज्ञः॥१६४॥

सन्ति पश्चात्तनात्तज्ञास्तत्तन्नामाभिमानिनः। इत्यादिश्चतिभिः सम्यग्भेदपक्षोऽतिज्ञोभते॥१६५॥

तथा भेदेऽपि सर्वत्र वाक्यान्यनवकाशतः। सन्ति तेषामहं मध्ये कानिचित्सम्प्रदर्शये॥१६६॥

यथेश्वरस्य जीवस्य भेदः सत्यो विनिश्चयात्। एवमेव हि मे वाचं सत्यां कर्तुमिहाईसि॥१६७॥

यथेश्वरश्च जीवश्च सत्यभेदौ परस्पररम्।

तेन सत्येन मां देवास्त्रायन्तु सहकेशवाः॥१६८॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्वाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते॥१६९॥

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविञ्च बिभर्त्यव्यय ईश्वरः॥१७०॥

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादिप चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥१७१॥

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्। स सर्वविद्वजित मां सर्वभावेन भारत॥१७२॥

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानग। एत्बुध्वा बुद्धिमान् स्यात् कृतकृत्यश्च भारत॥१७३॥

# २० जगतः सत्यत्वसमर्थनम्

सृष्टिश्च प्रळयश्चैव संहारो मुक्तिरेव च। देवा ऋषिप्रभृतयो लोका भूरादयस्तथा॥१७४॥

अनाद्यनन्तकालीनाः सर्वदैकप्रकारतः।

जगत्प्रवाहः सत्योऽहं नैव मिथ्या कथाञ्चन॥१७५॥

ये त्वेतदन्यथा ब्रूयुः सर्वहन्तार एव ते।

देवैर्विष्णवादिभिः श्रप्ता ऋषिभिर्मानुषादिभिः॥ १७६॥

सेतिहासैस्तथा वेदैः सर्वे यान्तयधरं तमः। शास्त्रतत्त्वमविज्ञाय तथा वादबला जनाः। कामकोधाभिभूतत्वादहङ्कारवशं गताः॥१७७॥

#### २१ मायिमतनिन्दा

याथातथ्यमविज्ञाय शास्त्राणां शास्त्रदस्यवः। ब्रह्मस्तेन निरानन्दा अपक्रमनसोऽशिवाः॥१७८॥

वैगुण्यमेव पञ्यन्ति न गुणानि विनियुज्जते। तेषां तमञ्जीराणां तम एव परायणम्॥१७९॥

यतः स्वरूपतञ्चान्यो जातितः श्रुतितोऽर्थतः। कथमस्मि स इत्येव सम्बन्धः स्यादसंहितः॥१८०॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्। अपरस्परभूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥१८१॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः। प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥१८२॥

सर्वब्रह्मत्ववेत्तारो जविब्रह्मत्ववेदिनः। अन्यसाम्यविदो विष्णोः विष्णुद्वेष्टार एव च॥१८३॥

सर्वे यान्ति तमो गोरं न तेषामुत्थितिः क्वचित्। भेदस्य व्यपदेशाच्च तत्र स्थित्यटनं तथा॥१८४॥

शारीरश्वोभयेऽपीह भेदेनैनमधीयते। उपदेशात्पृथक् चैव ज्ञोऽत एवेत्यथापि च। शारीरोऽनुपपत्तेर्न नेतरस्त्वनवस्थितेः॥१८५॥

नेतरोऽनुपपत्तेश्व भिन्नोऽचिन्त्यस्तथापि च। कविर्मनीषी सत्यः विश्वं सत्यं प्रधानु च। सत्यमेनं यच्चिकेत सत्य आत्मा तथा परम्॥१८६॥

अनाद्यनन्तं जगदेतदीदृक् प्रवर्तते नात्र विचार्यमस्ति। न चान्यथा क्वापि च तस्य चेदमभृत्पूरा नापि तथाभविष्यत्॥१८७॥

#### २२ जगत्सत्यत्वे प्रमाणानि

असत्यमाहुर्जगदेतदज्ञाः शक्तिं हरेर्ये न विदुः परां हि। यः सत्यरूपं जगदेतदीदृक् सुष्ट्वा त्वभूत्सत्यकर्मा महात्मा॥१८८॥

प्रत्यक्षादिप्रमाणेन सिद्धत्वात्तु परस्परम्। भेदस्याभेदवाक्यानामनुवादो ह्यभेदके॥१८९॥

तात्पर्यं तत्त्वमस्यादिवाक्यानामेव दृश्यते। इति चेद्देवसंस्थे स स्वस्मादन्यं न वेत्ति हि॥१९०॥

प्राणादितन्त्रं तस्मात्तु प्राप्तो भेदः पुरा ततः। अन्यमीशं वदत्यद्धा श्रुतिस्तन्नानूवादिता॥१९१॥

## २३ हरेरनुमानाद्यवेद्यत्वकथानम्

विमतं कर्तृसहितं कार्यत्वाद्गटवन्मया। नानया सिध्द्यति परो विमतं कर्तुरुत्थितम्॥१९२॥

रहितत्वात्सम्मतस्य प्रतिपन्नो यथाहृतेः। मयान्यगतयेशं तं नैव पश्यति चाक्षजम्॥१९३॥

अर्थापत्त्युपमेऽभावो वर्तते नैव केशवे। अनुवादस्ततः कुत्र भेदोऽस्माकं मतेन च॥१९४॥

# २४ भेदवाक्यस्याननुवादित्वव्युत्पादनम्

अनुवादः सुबहुभिः श्रुते दृष्टे च वस्तुनि।

नाप्रामाण्यं वदन्ति ज्ञाः प्राबल्यस्यैव दर्शनात्॥ १९५॥

तत्त्वमस्यादिकेऽभ्यासे प्रामाण्यं तैरपि स्फुटम्। अङ्गीकार्यं यतस्तस्माद्वाक्यानां नानुवादिता॥१९६॥ यस्तु पूर्वं न बुद्धः स्यात्तदर्थं वाक्यमुत्तरम्। इति चेदक्षजादेयों न बुद्धो वाक्यमस्य तु॥१९७॥

# २५ मायिमतस्य बौद्धाभेदकथनम्

अतोऽनुवादिता नैव यस्मिन् पक्षेऽनुवादिता। विना त्वभेदवाक्यानां द्वित्राणां सर्वशोऽपि हि॥१९८॥

अनन्तानन्तवेदानामनन्ता इति हि श्रुतिः। अङ्गीकार्यो यतस्तस्मान्न विशेषोऽस्ति बौद्धतः॥१९९॥

सोऽपि वेदेषु तूक्तानामर्थानामेष शून्यताम्। विक्त मिथ्यात्वर्तीस्माकं न साम्यं तेन विद्यते॥ २००॥

## २६ मायिमतस्य दुष्टताव्युत्पादनम्

इति चेत्सदसत्त्वस्य वैलक्षण्यं प्रमाणतः। न युज्यतेऽसतः ख्यातेरयोगाच्च सतस्तथा॥ २०१॥

बाधभावादिति प्राह वैलक्षण्यं विचेतनः। लोकानुभूतिं श्रृणुमो नैव लोकस्तथा वदेत्॥ २०२॥

असत्ता तेन विज्ञाता यदि नो वा न चेन्न सः। निवारयति विज्ञाता कथं तर्हि निषेधति॥ २०३॥

विधौ च प्रतिषेधे च तज्ज्ञानं प्रथमं भवेत्। न चेद्यः किञ्चिदेवोक्तं स्यात्तस्मात्प्रथमाज्ञता॥ २०४॥

वैलक्षण्यं सतश्चापि जातेस्तन्मात्रतोऽपि वा। जातितश्चेत्सद्बहुत्वं तन्मात्रात्सिद्धसाधनम्॥ २०५॥

अङ्गीकृते ब्रह्मणोऽद्धा वैलक्षण्यं ज्ञतादिभिः। अतो विलक्षणत्वस्य सदसन्न्यामभावतः॥ २०६॥

#### २७ बौद्धान्मायिनो हीनत्वकथनम्

बौद्धात्कष्टतरो मायी सर्ववेदैर्बहिष्कृतः। स्वयमेव म तु ब्रूते वेदबाह्यत्वमात्मनः॥ २०७॥

विशिष्टो मायिनो (वादिनो) मायी वैदिकोऽहमिति ब्रुवन्। लोकान् विनाशयित हि हीनो बौद्धादतः परम्॥ २०८॥

# २८ मायिनश्चोरत्वापादनम्

यथा चोरो मन्त्रयित्वा सर्वस्वहरणाय वै। गच्छेदृहं तु धनिनामेको याजिवदेव वा॥ २०९॥

सहस्रणीर्वा अथ वा विद्वन्मानी स तत्र हि। वृत्त्या यया कया वापि प्रतीक्षन् विवरं वसन्॥ २१०॥

विश्वस्तेषु स्वापत्स्वेषु वित्तं सर्वं ददात्यसौ। बहिष्ठाय तु चोराय मुदा ययतुरुत्तरम्॥ २११॥

परिहार्यो भवेद्वाह्यो (न्यो) वर्त्मवृत्त्यादिभिस्ततः। महापापीति सम्प्रोक्तः दस्युरन्तर्गतः शठः॥ २१२॥

तथा मायी च सर्वैस्तु सदा पूज्यतमाश्रमम्। अनुतिष्ठंस्तत्त्वसूत्रभाष्यं व्य (न्य) कृत यत्नतः॥ २१३॥

प्रायज्ञः पुरुषार्थे तु लोकस्याकाङ्क्किता (तो) यतः । अतः परमसूत्राणां भाष्यं सर्वेऽपि गृहणते॥ २१४॥

अनूचानस्तु तद्गाष्यं वैदिकोऽहमिति ब्रुवन्। लोके स्ववश्नमायाते विश्वस्ते च शनैश्शनैः॥ २१५॥

वेदस्य क्रमशोऽतत्त्वावेदकाख्यप्रमाणताम्। आपाद्य जगतोऽप्येष ब्रूते मिथ्याख्यशून्यताम्॥ २१६॥ शून्यत्वं स स्वयं चापि ब्रवीति जगतो ननु। पूर्वं नासीदिदानीं न नोत्तरं च भविष्यति॥ २१७॥

इति ज्ञानं यतस्तस्य समो बौद्धेन भण्यते। ततो विश्वस्तचोरत्वादिधकश्च निगद्यते॥ २१८॥

कथिञ्चद्गतिमाप्नोति लोकोऽयं कर्मबन्धनः। इति मत्वा परेशस्य वेदानां च विनिन्दनम्॥ २१९॥

वेदा (देवा) दीनां कारियत्वा तमस्यन्धे हि शाश्वते। निपातयति लोकं तत्पुरुषार्थस्य लुम्पनात्। चोर इत्युच्यते मायी सर्वकर्मबहिष्कृतः॥ २२०॥

परोक्ततत्वमस्यादिवाक्यार्थस्रण्डनम्। तत्त्वमस्यादिवाक्यानामपि नैवास्य मानता। तदित्युक्ते त्वमसितो विशेषो यदि गम्यते॥ २२१॥

न वा नो चेद्वार्थता स्याद्विशेषश्चेद्विशेषिता। सार्वज्व्यादिविशेषाणामस्वीकाराय मायिना॥ २२२॥

नाङ्गीकृता विशेषास्तु सर्वे सर्वज्ञता यदि। जगदस्तित्वमेव स्यादस्तित्वे जगतो हरेः (भवेत )॥ २२३॥

सर्वैश्वर्यादिधर्माः स्युर्भावं तेषां तु सज्जते। स्यात्सङ्गतिश्व वेदोक्ता तस्मान्नाङ्गीकरोत्ययम्॥ २२४॥

# २९ मायिमते शास्त्रवैयर्थ्यकथनम्

अवाच्यस्य तदित्युक्ते विशेषो यदि वा न वा। स्याचेद्विशोषिता नो चेद्वार्थतेति समस्तशः॥ २२५॥

अप्रामाण्यं भवेत्तस्य वेदस्येति न वैदिकः। ब्रह्मणः स्वप्रकाश्चत्वाविशेषाणामभावतः। अञ्चेषाणां हि वैयर्थ्यं ज्ञास्त्रस्य न भवेत्कथम्॥ २२६॥

## ३० मायिनो उन्मत्तत्वव्युत्पादनम्

किञ्च साक्षिमितं सर्वमपलप्य वदन्वद। ज्ञाने जातेऽथवा पूवरं शास्त्रमेतत्कृतं त्वया॥ २२७॥

जाते चेन्नैव गटते ह्यभावात्सर्ववस्तुनः। शरीरत्यागपर्यन्तं सर्वमस्तीति चेत्तथा॥ २२८॥

अभावेनात्मनोऽन्यस्य ज्ञातत्वाच्च तथा किमु। अधिकारिणं वदेत्तत्र वन्ध्यापुत्रोपमं परम्॥ २२९॥

पूर्वं चेदज्ञगदितं न प्रमाणं भविष्यति। विज्ञेषैरपि सर्वैस्तद्विनिर्मुक्तं स्वभावतः॥ २३०॥

अवाच्यं ब्रह्म चाज्ञेयमतर्कां लिक्षतं त्विति। उत्का पुनस्तदर्थं हि शास्त्रमेतद ब्रूवन् पुनः (खलः)॥ २३१॥

गुणादुन्मत्त एवासौ विदधाति बहूनलम्। तस्मादेव वदन्तस्तु असुरा इति निश्चिताः॥ २३२ ॥

# ३१ ऐक्यवादस्यासुरमतत्वव्युत्पादनम्

लोकहानाय जाता वै तथाह भगवान्प्रभुः। द्वौ भूतसर्गो लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च। दैवो विस्तरज्ञः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु॥ २३३॥

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः। न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ २३४॥

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।

अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम्॥ २३५॥

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।

प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥ २३६॥

अहं ब्रह्मेति वेनस्तु ध्यायन्नापाधरं तमः। तद्राद्धान्तो महीव्याप्तो भेर्या ख्यापयतोऽनिज्ञम्॥ २३७॥

असुरा राक्षसाश्चैव पिज्ञाचास्तत्पिथ स्थिताः। भूमौ तत्पृथुना सर्वं निरस्तं महितात्मना॥ २३८॥

पुनः कलियुगे प्राप्ते त्वष्टाविशंतिमे पुनः। वैवस्वतस्य समये जाताः क्रोधवशा भुवि॥ २३९॥

व्यापयन्ति दुरात्मानो मणिमांस्तत्पुरस्सरः। तथा च श्रीमदाचार्यैरुक्तं वेदप्रवकृभिः॥ २४०॥

## ३२ सर्वज्ञाभिमतस्रोकोदाहरणम्

नृहरिः सकलज्ञनामकः समुपैति हि मायिदानवान्। प्रपलायनमत्र तत्क्षमं त्वरया वो वसतिर्गुहासु च॥२४१॥

मायावादतमोव्याप्तमिति तत्त्वदृषा जगत्। भातं सर्वज्ञससूर्येण प्रीतये श्रीपतेः सदा॥ २४२॥

इत्यतो मायिनं नैव प्राप्नुयादृरुवीप्सया। तम एव ततो यस्मान्निश्चयादाप्यते ध्रुवम्॥ २४३॥

मायाभिरुत्सिसृस्पत इन्द्राद्या मारुरुक्षतः॥ अवदस्युरधूनुथाः॥ २४४॥

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु। अथेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्याम्॥ २४५॥

यस्तित्याजसिचविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।

यदिं श्रृणोत्यलकं श्रृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्॥ २४६॥

# ३३ मिथ्यावादिसङ्गनिषेधः

अथ ये चान्ये मिथ्यातर्कें ईष्टान्तैः कुहकेन्द्रजालैः। वैदिकेषु परिस्थातुमिच्छन्ति तैस्सह न संवसेत्। प्राकाश्या ह्येते तस्करा अस्वर्ग्या इति ह्याह॥ २४७॥

नैरात्म्यवादकुहकैर्मिथ्यादृष्टान्तहेतुभिः। भ्राम्यन् लोको न जानाति वेदविद्यान्तरं तु त(य) त्॥२४८॥

इत्यद्धा श्रुतयश्चाहुरेतमर्थं तु मायिनाम्। गुरुत्वानिधकारित्वं वेदबाह्यत्वमेव च॥२४९॥

जिज्ञासा चाधिकारो गुरुरिप गिगमा ब्रह्मसूत्राणि शिष्या ज्ञानं चाज्ञानभिक्तः सह निखिलजगद्धन्धनान्मुक्तयवस्था। एषां ते सत्यभूता निखिलगुणविभोर्ज्ञानतः किल्पता वै यद्धत्स्वप्रस्सहेरन् कुमतिमदमथो मायिनां केऽत्र भव्याः॥ २५०॥

#### ३४ गुरुलक्षणम्

मन्दमध्योत्तमत्वेनेत्यादिनोक्तं तु लक्षणम्। गुरोरपि समं प्राहुर्वेदवेदार्थपारगाः॥ २५१॥

द्वित्रंशल्लक्षणैर्युक्तो गुरुरुत्तम उच्यते। ब्रह्मैव तादृशस्तस्य समो नान्योऽस्ति कश्चन॥२५२॥

# ३४ अवरगुरुस्वीकारनिषेधः

क्रमादूनगुणास्त्वन्य ईरिता गुरवः क्रमात्।

यावदृणाः सप्तदश तदूनोऽवर इष्यते॥ २५३॥

स्वस्मादेवाधिकं शिष्यः प्रायात्रैव स्वतोऽवरम्। उत्तमं तु गुरुं प्राप्य न ततोऽवर इष्यते॥ २५४॥

## ३६ गुरुविचारः

पूर्वस्मादुत्तरो लब्धः स्वयमेव गुरुर्यदि। गृहणीयादविचारेण विकल्पः समयोर्भवेत्॥ २५५॥

अनुज्ञयैव पूर्वस्य प्राप्नुयादृरुमुत्तमम्। गुरुलङ्गनदोषः स्यादन्यथाप्राप्तितो महान्॥ २५६॥

उत्तमं तु गुरुं प्राप्य त्यत्का तं मोहतोऽवरम्। प्राप्य दोषेण संयति निरयं नात्र संशयः॥ २५७॥

गुरोरनुज्ञामाप्यापि (ज्ञानथापि) ह्यवज्ञायैव गच्छति। अवज्ञादोषतस्तस्य गुरोर्याति तमो ध्रुवम्॥ २५८॥

तथाह भगवान् स्कान्द उमायै शङ्करः प्रभुः। एकादञ्यादिधर्मैंस्तु वदन् प्रीतिं परां हरेः॥ २५९॥

स्वस्यापि दोषैरेतैः स प्रीतेर्हानिं च सोऽवदत्। अर्थतः सर्वधर्माणां दोषैरेतैर्विहीनताम्॥ २६०॥

तमः प्राप्तिं तथा चाह नात्र कायार विचारणा। नच तस्मात्प्रियमतः केशवस्य ममापि वा॥ २६१॥

अन्यदैवतसामान्यं यदि विष्णोर्न पश्यति। गुरून्वा नावजानाति न चैवं वेत्ति मानुषम्॥ २६२॥

## ३७ गुर्ववज्ञाने उनर्थकथनम्

अवज्ञानाद्दरं प्रोक्तमवज्ञानादृरोर्गतिः। शिष्यस्योक्ता न चाण्वी वा गुरौ कलुषिते हरिः॥ २६३॥ कलुषी नरकं दद्यात्तत्रस्थः केश्चवः स्वयम्। मन्त्राश्च न फलन्त्यस्य शुभा मोक्षादिदायकाः॥ २६४॥ तस्माद्विद्वेषिणं विष्णोर्गुरोर्वेदस्य चापि वा। दोषिणं वा विना नैव गुरुस्त्याज्यः कथञ्चन॥ २६५॥

#### ३८ शिष्यस्वरूपकथनम्

एवमुक्तस्तु शिष्योऽपि संशेते नात्र शास्त्रवित्।
भक्तश्चेत्तत्र सन्यस्तो माधवे (वो) देवपक्षगः॥ २६६॥
विबुभूषु(भृक्षु) दंयावांश्च शक्यं चेद्रुरुणा सह।
तत्त्ववादिनमेवाथो प्राप्य तेनोक्तमार्गतः॥ २६७॥
प्राजापत्यद्धादशकं चरेद्विष्णुं स्मरन् हदा।
भूयो भूयो हिरं नत्वा प्रार्थयेदगनाशनम्॥ २६८॥

## ३९ हरिनिन्दाप्रायश्चित्तम्

नाहमेतावतीं वक्ष्ये निन्दने निष्कृतिं हरेः। तथापि कालसम्बन्धान्निश्शक्तानां च तन्द्रिणाम्॥ २६९॥ मत्सराणां तथा स्वल्पबुद्धीनां विषयात्मनाम्। दुर्मार्गे क्षिप्रगन्तृणां सन्मार्गे मन्दचेतसाम्॥ २७०॥ स्वल्पामेव वदेद्गीतो निस्सत्वानां च निष्कृतिम्। गुरोर्नीतिरशक्या चेत्स्वयमेव ततो व्रजेत्॥ २७१॥ बहुनात्र किमुक्तेन सिद्धवेदार्थासिद्धये। पुरुषैः सर्वथा कार्यस्तत्त्ववादिसमाश्रयः॥ २७२॥

## ४० योग्यादन्यगुरुनिषेधः

तथाह भगवान्व्यासः त्यागे दु (दृ) ष्टयुरोर्वचः।
गुरूक्तमपि न ग्राह्मं यदनर्थेऽर्थकल्पनम्॥ २७३॥

यदुक्त्या न प्रबुद्धोत यथान्धो ह्यन्धनायकः। गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः॥२७४॥

उत्पथं प्रतिपन्नस्य सङ्गिस्त्यागो विधीयते। ततः सर्वप्रकारेण बुभूषु (भुक्षु) स्तत्त्ववादिनाम्॥ २७५॥

विनान्यं न व्रजेत्तत्त्वजिज्ञासुस्तं व्रजेच्च सः। पाप्य तं विष्णुभक्तस्तु त्यजेत्सर्वं विरक्तिमान्॥ २७६॥

पूर्वमेव विरागोऽस्य प्रसादाज्जायते यदि। विष्णोस्तर्हि समस्तं च त्यत्का तं गुरुमाप्नयात्॥ २७७॥

एवं हि विष्णुतीर्थेन प्रसादादृरुकृष्णयोः। जिष्यो गुरुश्चाधिकारी सम्मतोऽत्र निरूपितः॥ २७८॥

नमो नमोऽशेषचिदेकसारगुणैकधाम्ने पुरुषोत्तमाय। स्वभक्तसंसारविनाश्चनाय परामृतानन्दपदप्रदायिने॥२७९॥

इति श्रीमद्विष्णुतीर्थीयसन्यासपद्धतौ अधिकारिकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

# अध्यायः २

# द्वितीयोऽध्यायः

नमेनमः सर्वसुरेषु योऽसौ स्थित्वा तु तत्तदृणतः समस्तम्। यज्ञादिभोगान्निस्तिलान्य एको भुड्न्के विष्णुर्देवदेवः परात्मा॥१॥

ऋग्वेदिपरमहंससन्यासग्रहणप्रकारः। पूर्वेद्युर्भोजयेद्विप्रान् वैष्णवांश्च समाहितान्॥२॥

#### १ वपनम्

ततः स्मरन्वासुदेवं कृत्वा वपनकर्म च। सहदमश्रुलोमनखं स्नातात्सम्यक्समाहितः॥३॥

# २ मृत्तिकाग्रहणम्

हस्तपादनखेष्वद्धा मुखे चैव मृदं क्षिपेत्। प्रतिप्रति द्विषङ्कत्वो वृषळस्पृष्टिशुद्धये॥४॥

द्विषड्वारं तु संशोध्य मुखमाचमनात्ततः।

मृदालिप्य निमज्जेच द्विषड्वारं शिरस्यतः॥ ५॥

स्मृत्वा विष्णुं पाणिपादं प्रक्षाल्याचमनं चरेत्। उद्धतासीति मन्त्रेण मृदालिप्य शरीरगम्॥६॥

अतो देवा इति सुरान् प्रार्थयेद्विष्णुमन्यया। तथा तदस्यापोऽस्मांस्त्रिभिः पादैरपोऽर्थयेत्॥ ७॥

नत्वा चैतान् मृदं गृह्य नाभिदग्नजले मृदम्। लोलतेत्कटिदग्ने वा जानुदग्नेऽथ वा ततः॥८॥

#### ३ स्नानम्

निमज्य त्रिरथाचम्य संस्मरन् परमं हरिम्। प्राणानायम्य लिप्याथ क कुत्स्थां पूर्ववन्मृदम्॥९॥

निमज्जंस्तज्ज (निमृज्य स्त्रिजं) पेत्सूक्तं ऋतुमित्यादिकं पुनः। पुनश्चेति त्रिशस्मम्यगाचम्याथैवमेव हि॥ १०॥

चरणं पवित्रमिति च निमज्जन्नप्सु शायिनम्। स्मरन् जपेदथात्मस्थमभिषिञ्चच पादशः॥ ११॥

हरिं पुरुषसुक्तेनोदिदाभ्या इति चोत्तरेत्। वस्त्रमभ्युक्ष्य परिधायाचम्यात्मानमुक्षयेत्॥१२॥

## ४ देवादितर्पणम्

आपोहिष्ठेति तिसृभिस्तर्पयेद्देवतास्ततः। ऋषीन्पितृन् व्याहतिभिर्युक्तान् क्रमश एव हि॥१३॥

#### प्र जपः

जपेच पौरुषं सूक्तं वैष्णवानि ततो जपेत्।

६. आहारः ३३

स्वस्तिवाचनमन्त्रेष्टं यदि कुर्यात्ततः परम्॥१४॥

#### ६ आहारः

स्मृत्वा तु वासुदेवाख्यं प्रणवेन समाहितः। सक्तुमुष्टिं समञ्चीयादालभ्य हृदयं जपेत्॥१५॥

व्याहतीरानयेत्क्षिप्रं दिधमश्रं गृतेन च। गायत्र्याः पादशोऽर्धर्चऋचा चेति पृथक्पृथक्॥१६॥

#### ७ आपस्तम्बानाम्

तर्पयेद्देवताः षड्वै स्मृत्वा व्युत्क्रमतः पराः। वासुदेवादिकाः सिंहवराहौ चाचमेत्पृथक्॥१७॥

## द विरजाहोमप्रकारः

प्राणानायाम्य धीरो वा उपलेपादि कर्म च। आज्यसंस्कारपर्यन्तं कृत्वा पूर्णाहुतिं यजेत्॥१८॥

वासुदेवं स्मरन् पश्चाच्चतुर्मूर्तीः स्मरन्नपि। जुह्याद्वाहतीः सर्वाः सर्वमाज्यं समापयेत्॥१९॥

सम्भाराः पूर्वमेवैते शिखिनःप्रागुदग्दिशि।

निधाप्य वैणवो दण्डः कौपिनाच्छादने तथा॥ २०॥

अन्ये च ये तु सम्भारा हौम्या आज्यादिका अपि। अग्नीषोमौ च पुरुषं स्मृत्वान्वाधानपूर्वकम्॥ २१॥

इध्मनां बन्धनां तन्तुकर्म कृत्वा ततो रवौ। अस्तं यातेऽग्नितः पश्चात्कार्णं चर्म प्रसृत्य च॥२२॥ तच्चर्मणि तृणं न्यस्य निरसेन्मनुना तृणम्। प्रक्षाल्य हस्तं दर्भेषु प्राङ्मुखस्तूपविश्य च॥२३॥

ध्यायन् हरिं न स्वपन्स उदितेऽरुण एव च। स्नात्वा परिसमूहादि कर्म कुर्यात्स्मरन् हरिम्॥२४॥

निर्वापप्रोक्षणे स्यातां स्मृत्वा पुरुषमेव वै। अथाज्यभागपर्यन्तं कर्म सर्वं समानतः॥२५॥

भवेत्पुरुषसूक्तेन प्रत्यृचं जुहुयात्समित्। पूर्णाहुतिं च व्याहृत्या वासुदेवं स्मरन्यजेत्॥ २६॥

पुनराज्येन जुहुयात्प्रत्यृचं तेन बुद्धिमान्। जुह्वामादाय हविषा प्रत्यृचं जुहुयात्पुनः॥२७॥

स्रुवेणैव तथाज्यं च पुरुषश्वश्चदेवताः। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत्॥ २८॥

एवं हि शाखिनामाश्वलायनानां विशेषतः। बोधायनविशेषोऽपि प्रोच्यतेऽतः परं मया॥ २९॥

# ९ यजुर्वेदिसन्यासप्रकारः

दिधकाव्योऽकारिषमापोहीति ऋचस्तथा। वारुण्यश्च तथाप्याश्च चतस्रो वै प्रकीर्तिताः॥ ३०॥

पवमानस्सुवर्चन इत्याद्या दश सप्त च। समस्ता व्याहतिश्व स्यान्नवोनव इतीतरा। स्वस्तिवाचनमन्त्राः स्युरेते बोधायने मते॥ ३१॥

#### १० सामवेदिसंन्यासप्रकारः

भवेदुक्लेखनं मध्ये पूर्वाशां प्रति दक्षिणे।

उत्तरे च तथा मध्ये उत्तराशां च पश्चिमे। पूर्वे चैव हि षेड्खाः शिखिनं तासु निक्षिपेत्॥ ३२॥

उपस्थितिर्भवेदग्नौ ज्वलिते जुष्ट इत्यृचा। ब्रह्मणो ह्यन्यमन्त्राभ्यां निरासश्चोपवेशनम्॥ ३३॥

अहेदैधिषव्योनियत इत्यादी तौ मनुस्मृतौ। सर्वत्र ब्रह्मणो मौनं ध्यानं विष्णोस्तु सर्वदा॥ ३४॥

भवेद्वाचि विसृष्टायामतो देवा इति द्वयम्। तद्विष्णोरिति च द्वे वा विष्णो त्विमिति वा पराम्॥ ३५॥

जपेद्मिष्णुं परं ध्यायन् ब्रह्मादिनुतपद्मयम्। हुतयोरूध्वरसमिधौ मन्त्रवत्परिषिञ्चति॥ ३६॥

अलङ्कृतं सम्यगग्निमदितेऽन्वादिमन्त्रकैः। दक्षिणे प्रथमं पश्चात्पश्चिमे चोत्तरे तथा॥३७॥

सर्वतः प्रणवेनाथ जुहुयात्सिमधः सुधीः। स्मृत्वा प्रजापतिं तूचैः स्वाहेति जुहुयादथ॥३८॥

आगारमवगारं वा इन्द्राय जुहुयात्पुनः। चक्षुषी चाष्टभिर्मन्त्रैः ह्याद्यक्तो वहादिभिः॥ ३९॥

व्याहतीश्व द्वयं तत्र पौरुषे तु विशिष्यते। सूक्ते स्विष्टकृतो मन्त्रो हव्यवाहमिति द्वयम्॥ ४०॥

कृत्वानुयाजपर्यन्तं मन्त्रैरेतैर्यजेदथ। त्रयोदञ्च जयाद्या वा अभ्यातानां दञाष्ट च॥४१॥

द्वाविंग्रद्राष्ट्रभृतोऽपि यद्देवा विंग्रतिस्तथा। प्रजापते मनोज्योतिरयाश्चाग्नेस्तथा परः॥४२॥

यदस्मिन् स्वस्तिनो यन्मे पुनरग्निव्याहतयः।

आभिर्गीभिरनाज्ञातं तथा पुरुषसिम्मतः॥ ४३॥ यत्पाकत्रा यदस्येति तानाज्यपरिधि न्यसेत्। सिवशेषैस्च मन्त्रैस्तु परिषिञ्चति पूर्ववत्॥ ४४॥ अग्नेरावाहने ब्रूयुरेकदामर्शनं च ते। मन्त्रस्च सिवशेषः स्यादन्यत्सर्वं समानकम्॥ ४५॥

#### ११ छन्धोगाख्यसामशाखिविशेषविधिः

छन्दोगानां विशेषोऽत्र प्रोच्यते ब्राह्मणाः समाः। आचार्यद्वत्तदर्भास्ते त्वर्चितं तूदकुम्भकम् ॥ ४६॥ सङ्गद्य दर्भैर्नवभिर्जपेयुस्त्वृग्भिरादरात्। उपास्मा इति तिस्रो वै दविद्युतत्या रुचेति च॥४७॥ पवमानस्य तदिस्रस्ततो दद्याज्जलादिकम्। उदगायशवा आपः सन्तु दीर्गायुरस्तु च॥४८॥ गन्धाय चारिष्टमस्तु चाक्षताय तथैव च। सौमनस्यं तु पुष्पाय प्रत्येकं तु विना मनुम्॥ ४९॥ दद्याज्जलं च स्वस्त्यादिमनुना दक्षिणादिकम्। मन आधीयतामादि जपेयुः सर्व एव च॥५०॥ एतैर्वा आदि चैवं तु पुण्याहादि ततः परम्। स्वस्तिमादि पुनः सर्वे स्वस्त्यादि च भवेत्तथा॥ ५१॥ एतेन वा आदि तथा ऋद्यादि च तथा भवेत्। प्रोक्षन्तामथ मन्त्रैस्ते गायत्री प्रथमा स्मृता॥ ५२॥ आपो हीति त्र्यूचः सैतास्तरत्स इति चैव हि। पावमान्यः षडेतोनुस्त्र्युचः शन्नो परास्त्र्युचः॥ ५३॥

पवित्रं ते गृतवती तमुष्टवामापि चैव हि। निकरिन्द्रेति चैवान्या कयानास्तिस्र एव च॥५४॥

भद्रं करणेभिः स्वस्तिनश्च पुण्याहमिति हि स्मृतम्। लिप्ते सिकतमस्याथ समिधा शकलेन वा॥५५॥

उल्लिखेत्प्रथमं प्राचीं दक्षे पश्चात्तथादितः। उदीचीमन्ततः प्राचीं तिस्त्रः प्राचीश्च मध्यतः॥ ५६॥

क्रमाद्दक्षिणतो ज्ञेया अग्निमाधाय पूर्ववत्। अन्वाधायाद्वाहृतीभिः देवतास्मृतिपूर्वकम्॥ ५७॥

बन्धनं बर्हिरादेस्तु भवेद्दभौ सिमद्वयम्। न्यस्याः सिमिद्भः षोडश्रभिरमा परिधयोऽत्र हि॥५८॥

न स्युरूर्ध्वे च समिधौ मनोरग्निं समूहयेत्। इमं स्तोमादिभिर्मन्त्रैभूमिं स्पृत्रय हविर्भुजः॥ ५९॥

पश्चादन्त्याक्षरैः स्पृत्रयाच्चतुर्भिर्दिक्षु च क्रमात्। पूर्वादिषु ततो भूमिं संस्पृत्रय च जपेन्मनुम्॥६०॥

इदं भूमेरिति ततो ब्रह्माणमुपवेशयेत्। आवसोरिति मन्त्रेण सीदेद्दक्षऽग्निनो मुनिः॥ ६१॥

त्रिभिर्वा पञ्चभिर्दर्भैः परिस्तीर्याग्निमग्रकैः। छादयेद्दर्भमूलं तु निर्ऋतेर्दिशि चाग्नितः॥६२॥

दर्भेषूत्तरतो द्वन्द्वं दिशि पात्राणि सादयेत्। स्त्रुवदर्व्योः प्रणीतार्ते कंसं चमसमेव वा॥६३॥

स्थाल्यां चाज्यं न्यस्य चरोर्मेक्षणं चेध्मबर्हिषि। पवित्रेस्थोऽथ वैष्णव्या वीतिदर्भान् छिनन्ति च॥६४॥

विष्णोर्मनसा पूतेस्थ इत्युन्मार्ष्टि जलेन तु।

अथोत्तानानि पात्राणि सपवित्रस्तु प्रोक्षयेत्॥६५॥

कमण्डलुजलेनाथो चरुनिर्वापणादिकम्। कृत्वाज्योत्पवनं ककुर्याद्देवास्त्येत्यामिन्त्रतः॥६६॥

विना तु पुनराहारमाज्यादिश्रयणं त्वथ। अग्निं हविः पाचकं च सयुज्यादन्यपावके॥ ६७॥

जान्वाप्यमन्त्रैरग्निं च परिषिञ्चेत्पुरोक्तवत्। अन्यमन्त्रे विशेषोऽस्ति समिधं त्विध्मसंयुताम्॥६८॥

तारेण हुत्वा स्वाहेति समिधो दश पञ्च च। आदाय चाभिगार्याथ ब्रह्माणं प्रब्रवीत् च॥६९॥

ब्रह्मन् होष्यामि तेनापि प्रत्युक्तो हूयतामिति। औं स्वाहेति तु हत्वाथ पूर्णपात्रं निधीयताम्॥ ७०॥

इध्मयुक्तान् सिमद्दर्भान् करे सङ्गह्य पुष्पकम्। भूमिस्थपूर्णपात्रं च जिपत्वा प्रपदं शुभम्॥ ७१॥

ध्यायन् सम्पूर्य तत्पात्रं पुष्पाद्यं तत्र निक्षिपेत्। प्रपदं तप आदि स्यादनुपानं भवेत्पुरा॥ ७२॥

विरूपाक्षोऽसिपर्यन्तं स्थापयेत्पूर्ववच तत्। दर्भैरन्यैश्व सञ्छाद्य सिमद्दर्भान जुहोति तान्॥ ७३॥

इभ्माङ्गहोमः कर्तव्यो व्याहतीभिस्त्रिभिस्तथा। बहिरास्तीर्य साद्यज्यं प्रधानो होम इष्यते॥ ७४॥

हुत्वानुयाजसिमधं ततः पाहि त्रयोदशीम्। यजेद्दश व्याहृतीश्व दश्चिस्य तथैव च। याज्या तूष्णीं समित्वं च प्राजापत्याहृतीर्यजेत्॥ ७६॥

परिस्तृतीः समादाय चाग्राण्याज्ये समज्जत।

अक्तं रिहाणा इति च मन्त्रेणानेन भिद्य च॥७७॥

मध्यमूले च तावग्नौ यो भूतानामिति क्षिपेत्।

असुभ्य इति मन्त्रेण होमशेषं समापयेत्॥७८॥

विसृज्य रज्जुं हुत्वाग्नौ गूष्णीं च समिधं यजेत्।

परिषेको भवेन्मन्त्रैर्विशेषोऽन्त्यमनोर्भवेत्॥७९॥

गायेद्यदीन्द्रामिति च जपेद्दीर्गायुरादि च।

ब्रह्मादीनां प्रदेयात्र प्रदेयात्र दक्षिणोद्वाहयेच्च तम्॥८०॥

ब्रह्मान्नित्यादिमनुना प्रणीतां च समानयेत्।

तामुपस्पृश्य सामानि गायेत्सम्यक्समाहितः॥८१॥

कयान इति तिस्त्रोचों भद्रमित्यादिका परा।

मार्जनादि त्रयस्त्रिंशादित्यादिमनुनामरान्॥८२॥

स्तुत्वा गायेदायुरादिमनुमन्यांस्तथैव च।

उक्ता तलवकाराणां विशेषः प्रायशो न हि॥८३॥

#### १२ तोवकारसन्यासविधिः

विशेषः किश्चदेवास्ति तं ब्रूयामावगारके।
इन्द्रं पूरुषसूक्तं च नवर्चं प्राहुरत्र हि॥ ८४॥
तथापि षोडश्चं हि सर्वेषां सममेव हि।
ततस्तेनैव जुहुयात् षोडश्चेन सर्वथा॥ ८५॥
अन्यत्सर्वं समानं स्यान्न विशेषोऽस्ति कुत्रचित्।
स्वस्तिवादस्तृणस्यापि निरासश्चोपवेशनम्॥ ८६॥
प्रवाहनं तु वेश्च यथाशाखं विधीयते।
स्थालिपाको यथा प्रोक्तः शाखायां तद्वदेव हि॥ ८७॥

सूक्तहोममृते ज्ञेयः पुरुषः सूक्तदेवता। सर्वज्ञाखासु चैवं हि जानीयात्कर्मबुद्धिमान्॥ ८८॥

यथाग्निमेकहस्तेन प्रताप्यायन्त इत्यृचा। संस्पृज्ञेन्मुखमारभ्य यावद्भदयमञ्चसा॥ ८९॥

## १३ अग्निमूर्तिध्यानम्

तूष्णीं द्विः संस्पृशेद्धायेत्तमग्निं दक्षिणे करे। बिभ्राणं शक्तिमभयं रक्तवर्णं सुभूषितम्॥ ९०॥

#### १४ प्रैषोच्चारणप्रकारः

ततःप्रभृति यावत्तु गुरोर्विद्यामवाप्नुयात्। तावत्स वाग्यतस्तिष्ठेज्जपेत्प्रैषां ततःपरम्॥९१॥

अनिरुद्धादिनामानि चतुर्थ्यन्तानि मूलतः। सव्याहतीनि सन्यस्तं मयेत्येतास्तु देवताः॥ ९२॥

उद्दिश्य सर्वमर्प्यं स्यात्तद्विभागं ब्रवीम्यहम्। अनिरुद्धाय वित्तं च शरीरं च समर्पयेत्॥९३॥

# १५ अनिरुद्धनामनिर्वचनम्

सर्वचेष्टकरूपत्वादनो वायुरुदाहृतः। तद्वाननिर्हरिः स स्यादृद्धश्चैव स्वभक्तकैः। शत्रुभिः सोनिरुद्धश्चेत्यनिरुद्धः प्रकीर्तितः।९४॥

#### १६ प्रद्युम्ननामनिर्वचनम्

प्रद्युम्नायेन्द्रियाण्येव तैजसानि दशार्पयेत्। द्योतनत्वाज्ज्ञानवत्त्वात्प्रद्युम्न इति कीर्तितः॥९५॥

# १७ सङ्कर्षणनामनिर्वचनम्

सङ्कर्षणाहयेत्यर्प्यं हि मनआदि चतुष्टयम् । सम्यग्ज्ञानस्वरूपत्वादानन्दत्वात्स केशवः । सम्यक्कर्तृस्वरूपत्वात्सम्यग्प्रहणरूपतः॥९६॥

सम्यक्प्राणस्वरूपत्वात्सम्यक्च बलरूपतः। संकर्षण इति प्रोक्तः स्वयमेवार्पयेत्ततः॥९७॥

#### १८ वासुदेवनामनिर्वचनम्

वासुदेवाय महते सर्वत्रापि च वासनात्। वर्तकत्वाच सर्वस्य प्राणदेवत्वतस्तथा। वासुदेवस्स विज्ञेयः ज्ञानिनां मोक्षदो हरिः॥९८॥

#### १९ अभयदानम्

दद्याद्भूताभयं चाम्बुपूर्णेनाञ्चलिना स्मरन्। प्रीयतां वासुदेवो म ईश्वानीं दिश्वमेव ताम्॥९९॥

नीनीयादभयं सर्वभूतेभ्य इति मन्त्रतः। सर्वभूतेषु विष्णोस्तु विशेषावस्थितेः सदा। तत्रस्थं केशवं ध्यायन् सर्वभूतानि न दृहेत्॥१००॥

अथैशानीं दिशं गच्छेत्पुण्ययतीर्थजलाशयम्। दण्डादिकं तमन्वेव नयेयुब्राह्मणास्ततः॥ १०१॥

#### २० प्रैषोच्चारणानन्तरं कर्तव्यकर्मविवेकः

आचम्य विष्णुं तीर्थेशं नत्वा देवांश्व सर्वशः।
निमज्याप्सु त्रिशो हस्ते शिखायज्ञोपवीतके॥१०२॥
आदाय जुहुयादप्सु प्रणवेन समाहितः।
सस्वाहेन पटाद्यं च त्यत्का सर्वं स उत्तरेत्॥१०३॥
दीयमानं तु गृहणीयात्कौपीनाच्छादनादिकम्।
इन्द्रस्य वज्रोऽसि तथा सखामेत्यादिमन्त्रतः॥१०४॥
दण्डं हरेद्युग्मपर्वं सुपार्श्वं चापि किञ्चन।
सर्वतः सत्वचं वृत्तमृजुलोमप्रमाणकम्॥१०५॥
मन्त्रार्थों वर्ततेतस्थ वासुदेवव्यपेक्षया।
अथ स्त्रात्वा यथावत्स तर्पयित्वा हरिं परम्॥१०६॥

#### २१ गुरूपसत्तिः

नत्वा विष्णुं च संस्तूय प्रव्रजेदन्तिकं गुरोः।
युक्तो गृहीत्वा सिमधो दन्तकाष्ठानि वा यितः॥१०७॥
दण्डे च जोळिकां नह्य कौपीनं चाङ्गवस्त्रकम्।
सम्यक् बध्वान्तिकं याते सव्याग्रं च नतं तथा॥१०८॥
ब्रह्माञ्चल्या गृहीत्वा तं दोर्दण्डे सव्य एव च।
निधाय वस्त्रं त्वन्येन चाच्छाद्य किटमञ्चसा॥१०९॥
यो य एवोत्तमः प्रोक्तस्तं गुरुं प्राप्य वन्दयेत्।
ततो दण्डादिकं सर्वं न्यस्य स्त्रस्ताम्बरः स्वयम्॥११०॥
पूर्वं नत्वा गुरुं सम्यक् गुरूंञ्च परमादरात्।
निधाय समिधस्तत्र विना भूमौ पटादि च॥१११॥

२२. गुरुवन्दनम् ४३

#### २२ गुरुवन्दनम्

नमेत्पञ्चाङ्गतो भक्तया प्रथमं हृदयाञ्चलिः। वामोपर्यन्यपादश्च पादयोर्ग्रहणं ततः। चतुश्चतुर्जानुतो वै तलमामर्दनं भवेत्॥११२॥

बहुज्ञो वा दृढः सम्यग्दक्षबाहुपुरस्मरम्। प्रत्येकं दक्षहस्तेन रजः ज्ञिरसि धारयेत्॥११३॥

चतुश्चतुर्नमेत्पश्चाद्वादशद्विगुणं शतम्। सहस्रं वाथ हस्ताभ्यां दक्षोच्चाभ्यां पदद्वयम्॥११४॥

गृहीत्वा धारयेत्केतु दक्षांसे सव्य एव च। करे (कण्ठे) चैवं त्रिज्ञः केच पुनर्न्यस्य स्मरेद्धिरम्॥११५॥

प्रार्थयेद्विष्णुभक्तयादि पुनः कुर्यान्नतित्रयम्। तेनोक्तः प्रणमेद्विष्णुं द्विगुणं वाधिकं तथा॥ ११६॥

ततोऽनुज्ञामवाप्याथ तदुत्त्योपविशेत्ततः। दर्भेषूत्तरमूलेषु दक्षभागे गुरोर्मुखम्॥११७॥

समाहितस्तस्य वीक्षन् ब्रह्माञ्चलिपुटस्तथा। ततो गुरून्नमस्कृत्य हिरं स्वगुरुमेव च। विष्णोश्चैव तथानुज्ञामादाय गुरुतस्तथा॥११८॥

# २३ प्रणवाद्युपदेशः

प्रबूयाद्भह्म परममेकवारं सनातनम्। तारतम्यं त्रिवारं वा चतुर्वारमथापि वा। तन्त्रसारोक्तमार्गेण गायत्रीमथवा पराम्॥११९॥

नारायणाष्टाक्षरं च वैष्णवं च षडक्षरम्। द्वादशार्णं व्याहृतिश्च षडेते मनवोऽखिलैः॥१२०॥ मुमुक्षुभिः सदा जप्या यतिभिस्तत एव हि। वक्तव्या गुरुणा सम्यक्पुनर्नत्वा च पूर्ववत्। अनुज्ञातेऽन्तिके विष्णोः परिवार्य गुरुं सदा॥१२१॥

# २४ हंससन्यासविधिः

हंसानामथ वक्ष्यामि विशेषं कर्मणि स्फुटम्। यज्ञोपवीतेन विना हवनं तूदके स्मृतम्॥१२२॥ अन्यस्य ग्रहणं च स्यात्पूर्ववद्गुरुरप्यसौ। एकाक्षरमृतं पञ्च मन्त्रांस्तस्य वदेच हि॥१२३॥ यदि साधुर्विनीतश्च शान्तो दान्तोऽन्यथापि तु। गायत्री च तथाष्टाणं उपदेश्यौ हरेर्मनू॥१२४॥

#### २४ त्रिदण्डियतिक्रमः

त्रिदण्डिनां विशेषोऽयं दण्डः शिक्यकमण्डलम्। कौशोयमासनं चैव पवित्रं जलपावनम्॥१२५॥ वस्त्रं वालाबवं पात्रं शिक्ये भिक्षाटनाय वै। यज्ञोपवीतं दण्डानि शुक्कानि जलपावनम्॥१२६॥

## २६ कुटीचकयतिक्रमः

कुटीचकस्तु पुत्रेण बन्धुना सोदरेण वा। नियत्या दीयमानं तु कुर्याद्मिक्षां नवान्यथा॥१२७॥ इति कर्म यतीनां हि प्रोक्तं सम्यक्प्रविस्तरात्। अथ वक्ष्यामि चाचारं नित्यकार्यं च सर्वथा॥१२८॥ अनन्तशीर्षाग्निकराय भूम्ने सर्वज्ञरूपाय समस्तवेत्रे। अनन्तयज्ञादिभुजे नमस्ते स्वभक्तसन्तापदुरिष्टहन्त्रे॥ १२९॥

।इति श्रीमद्विष्णुतीर्थीयसन्यासपद्धतौ होमप्रकारो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥
॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

# अध्यायः ३

# तृतीयोऽध्यायः

सृष्ट्वा विष्णुः सर्वमिदं जगच ब्रह्मादिकं वर्णचतुष्टयेन। युतं सदाचारमचीक्रृपपद्यो विशेषसामान्यतया स नोऽत्र्यात्॥१॥

#### १ ब्रह्मचार्यादिसदाचारशिक्षा

रवेरुदयतोऽर्वाकु मुहूर्ते पञ्चमेऽथ वा। यामेवापूर्वतोऽर्धे च सर्वथोत्थाय तं हरिम्। स्तुवीत पुण्डरीकाक्षं सर्वमाङ्गल्यरूपिणम्॥२॥

#### २ मलविसर्गः

अथ गच्छेच निऋतेराशां दूरतरां पथा। कट्या ऊर्ध्वं तु वस्त्रेण प्रावृत्य विसृजेन्मलम्॥३॥

वाग्यतः शिरसो वस्त्रं न त्यजेन्मूत्रकेऽपि च। न केवलधरायां तु त्यजेन्मूत्रपुरषीके॥४॥ उत्तराश्चामुखो भूत्वा त्वहस्सन्ध्यासु चान्यथा। निश्चायां तत आगच्छेद्वस्त्रेणच्छाद्य सर्वतः॥५॥ जान्वोरूर्ध्वं विना चास्यं शौचात्पूर्वं गुरुं यदि। स्वज्येष्ठानथ वा दृष्ट्वा समीपप्राप्तितः पुरा॥६॥ सर्वोऽपि वाग्यतो मूर्धो वस्त्रं दूरत एव हि। त्यजेदधोमुखो गत्वा शौचं कुर्याद्यथाविधि॥७॥

## ३ पुरीषशौचे मृत्तिका

स्वेनैव पूर्वमथ वा शिष्येण स्थापितां मृदम्।
सङ्गद्घा लिङ्गे प्रथममेककृत्वो मृदं क्षिपेत्॥८॥
पञ्चापाने दश करे उभयोस्सप्त चैव हि।
एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः।
वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां तु चतुर्गुणम्॥९॥
एकदा गृहिणो भूयो लिङ्गशौचं विधीयते।
तत्रापि द्विगुणादिः स्यादेकदादि तथैव च॥१०॥

# ४ मूत्रे मृत्तिकाविधिः

मूत्रे चैषां करे त्रिः षडष्टापि दश हस्तयोः। द्विश्वतुः षट च सप्तापि चान्त्य एव करे मृदम्॥ ११॥ क्षिपेन्मानं मृदोऽपि स्यात्क्रमान्मूत्रपुरीषयोः। प्रसृत्यर्धं च तावच्च ह्यारभ्यामलकं भवेत्॥ १२॥ आईं यावत्तळेनाथ नैव मूत्रादि शोधयेत्। त्रिशः पदोरधश्चैव तथोपरि मृदं क्षिपेत्॥ १३॥

सव्यहस्तेन च मृदा शोधियत्वा पदो स्थले। सदा पुरीषशौचे तु जान्वोः प्रक्षाळयेदधः। हस्तं मृदा च प्रक्षाल्य चक्षुषी नासिके तथा॥१४॥

#### प्र न्यासिनामापचमनम्

त्रिश आस्यं तथाचामेदृग्वेदादित्रिभिः क्रमात्। स्वाहायुक्तैश्चतुर्थ्यन्तैः पादौ च प्रोक्षयेदधः॥१५॥

यज्ञायेति नमोऽन्तेन मनुना सम्मृजेन्मुखम्। तिर्यग्दिशस्तथैवाधश्वैकशो मनुभिस्त्रिभिः॥१६॥

व्याहत्याख्यैः कमाद्विष्णुं स्मरन् सर्वामरेष्वपि। अङ्गृष्ठोपकनिष्ठाभ्यां सुर्यायेत्यक्षिणी स्पृज्ञेत्॥१७॥

अङ्गष्टमध्यमाभ्यां च ह्याश्विभ्यामिति नासिके। अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु कर्णौ सोमाय चैव हि॥१८॥

अङ्गृष्ठमध्यमाभिस्तु प्रजापतय इत्यथ। गुह्यं शिरस्तु सर्वाभिर्देवेभ्य इति मन्त्रतः॥१९॥

अङ्गुष्ठेनाथ भुजयोरिन्द्रायेति तु मूलतः। मन्त्राणां तु नमोऽन्ते स्यात्पुनरेवं विधीयते॥ २०॥

सर्वेषां मूलमन्त्रेण प्राणायामो भवेत्त्रिज्ञः। पुनराचा च परमहंसानां प्रणवेन तु। आचामाद्यखिलं प्रोक्तं स्नानादन्यत्तथैव च॥२१॥

#### ६ दन्तधावनम्

ऋते दिनाद्वयं विष्णोर्धावनं च दतां भवेत्। यतीनां वनिनां चापि गृहिणामष्टमीं तथा॥ २२॥ ७. स्नानम्

चतुर्दशीं पञ्चदशीं जन्मक्षीणि रविक्रमम्। भवेन्न शोधयेद्गह्मचारी व्रतधरस्तथा॥ २३॥

तिष्ठन्मृदादिना नैव शोधयेदास्यमम्बुना। पूरियत्वा न चोत्तिष्ठेत्पुनराचमनं चरेत्॥ २४॥

#### ७ स्नानम्

मृदं निर्मध्य कक्षे लिप्य प्रक्षालयेत्त्रिज्ञः। मृदं तु ज्ञिर आरभ्य लिम्पेत्सर्वज्ञरीरके॥ २५॥

मृदं गृह्य गुरुन्नत्वा हिरं च तदनुजया। अवतीर्य जलं नद्यामाभिमुख्यं भवेदथ॥ २६॥

अन्यत्र च रवेरीषन्मृदं तत्र विलोळयेत्। स्मृत्वा नारायणं देवं प्रणवेन निमज्जति॥ २७॥

त्रिश आचम्य च हरिं स्मृत्वा प्राणांस्त्रिशो यमेत्। मृदं लिप्य त्रिशो विष्णुं स्मरन्मग्नोऽप्सु सञ्जपेत्॥ २८॥

तारमष्टोत्तरशतं चत्वारिंशदथापि वा। अष्टाविंशतिमेवापि नवकृत्वो निमज्य च॥२९॥

प्रतिप्रतिजपंस्तारं पुनराचम्य पूर्ववत्। मज्जनादि पुनस्तद्बत्कुर्याद्विष्णुं हृदि स्थितम्॥ ३०॥

अभिषिञ्चेच तेनैव मनुनाष्टोत्तरं शतम्। अष्टाविंशतिमेवाथ कृर्याच्छिरः (शिरसि त्रिः) त्रिशस्तथा॥ ३१॥

असंयोर्मुख एवाथ कुर्यात्पुण्डं मृदेन तु। उत्तीर्याचमनं कृत्वा वस्त्रेणास्यादि शोधयेत्॥ ३२॥

आचम्यायाम्य प्राणांश्च पुनराचमनं चरेत्।

हंसादीनां यतीनां च ब्रह्मचार्यादिनामि । पूर्वोक्तेनैव मार्गेण भवेत्स्नानविधिः परः॥ ३३॥

# ८ ऊर्ध्वपुण्ड्धारणम्

मृदा गोपिकया चोर्ध्वपुण्डं कुर्यात्समाहितः। के ललाटे च नाभौ च हृदये कण्ठ एव च। दक्षपार्श्वे भुजे कण्ठे सव्यपार्श्वे भुजे गळे॥ ३४॥

पृष्ठमूले च कण्ठे च स्तनपार्श्वे तथैव च। स्थानानि चैवमुक्तानि विच्म सामान्यतः क्रमात्॥ ३५॥

# ९ ऊर्ध्वपुण्ड्धारणमन्त्रः

वासुदेवः केशवश्च सनारायणमाधवः। गोविन्दश्चैव विष्णुश्च मधुहन्तृत्रिविक्रमौ॥ ३६॥

वामनः श्रीधरश्चैव हृषीकेशोऽब्जनाभकः। दामोदरश्च श्रीवत्सश्चतुर्थ्यन्ताश्च सर्वशः।

नमोऽन्ताः कौसतुभायेति सव्यस्तनमुपैव वा॥ ३७॥

# १० शङ्खचक्रधारणे मन्त्रः

बाह्वोर्मूले चक्रशङ्खौ धरेन्मन्त्रौ च तौ स्मृतौ॥ ३८॥ धरशब्दस्दन्ते तु चतुर्थ्यन्तो नमोयुतः। अर्थेऽस्मिन सन्ति नामानि तत्र तत्रोदितानि वै॥ ३९॥

#### ११ गोपीचन्दनमहिमा

गोपीचन्दनिलप्ताङ्गे यं यं पश्यति चक्षुषा। तं तं शुद्धं विजानीयान्नान्न कार्या विचारणा॥ ४०॥

ब्रह्मन् वृत्रभयात्सर्वे वयं त्वां शरणं गताः। महता तपसा त्वष्टुरवध्यस्य महात्मनः॥ ४१॥

वधाय तस्य वृत्रस्य पृच्छामोऽत्र विधे विधिम्। इत्युक्तः सोऽवदद्भह्मा सर्वलोकपितामहः॥ ४२॥

वधोपायं हि देवेभ्यो वृत्रस्याद्भुतकमर्कणः। देवाः श्रृणुता भद्रं वो वधोपायं रिपोःपरम्॥ ४३॥

प्रोक्तं तु विष्णुना पूर्वं सर्वदा धृतमेव मे। मधुग्न (ग्नो) नामभिदेहे धृत्वा तद्भनतचन्दनम्॥४४॥

चक्रशङ्कौ तथास्ये तु कण्ठे पद्माक्षमेव च। हरेर्नामानि च मुखे ततो वृत्रं हनिष्यथ॥ ४५॥

एवमुक्तास्तु ते देवास्तथा कृत्वा महौजसः। तत्रतत्र स्थितं वृत्रं निजग्नुर्विष्णुदेवताः॥ ४६॥

तस्मात्सर्वैश्व कार्याणि नरैस्तानि बुभूषु (मुक्षु) भिः। न विशेषोऽत्र वर्णानामात्रमाणां तथैव च। अयं भागवतो धर्मः सङ्गलृप्तो हरिणा स्वयम्॥ ४७॥

#### १२ चक्रादिधारणप्रमाणानि

ये शङ्खचक्राङ्कितबाहुमूलाः कण्टावलम्बिसरसीरुहबीजमालाः। ये वा ललाटफलके रचितोर्ध्वपुण्डाः ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रय-न्ति॥४८॥

# १३ ऊर्ध्वपुण्डाधारणे प्रत्यवायः

इति ब्रह्माण्डवचनं पवित्रं त इति श्रुतिः। अकृत्वा चोर्ध्वपुण्डं तु नैव कुर्याज्जपादिकम्॥ ४९॥

जप्तं दत्तं हुतं ध्यातं देवार्चा पितृतर्पणम्। व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्ध्वपुण्डं विना कृतम्॥ ५०॥

ऊर्ध्वपुण्ड्विहीनस्य इमज्ञानसदृज्ञं मुखम्। अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवोलकयेत्॥ ५१॥

## १४ तिर्यक्पुण्ड्निषेधः

तिर्यक्पुण्डं न कुर्वीत सम्प्राप्ते मरणेऽपि च। न चान्यन्नाम विब्रूयात्पादान्नारयणादृते॥ ५२॥

तिर्यक्पृण्ड्तिस्तिर्यगूर्ध्वपुण्डादथोर्ध्वगा। मुद्रा हि भ्रियते नित्यं ब्रह्मनाड्यनुसारिणी। इति स्रोकाश्च बहुशो ज्ञायन्ते व्यासनिर्गताः॥ ५३॥

#### १प्र भस्मधारणम्

तद्गृह्मचारिणो नित्यमूर्ध्वपुण्डं तु भस्मना। कुर्युरित्येवमाचार्यमतं सिद्धः पुरा कृतम्। कैरळं तौळवं देशं विनान्यत्राधुनापि हि॥५४॥

# १६ भस्मधारिणां कुत्सितत्वम्

क्रियते मध्यभूमौ हि ब्राह्मणा वेदपारगाः। विज्ञिष्टाश्च ततो ये ये पश्चात्पश्चादिहागताः। तेषां तेषां विज्ञिष्टत्वमेतदीया हि कुत्सिताः॥५५॥

# १७ त्रिपुण्ड्धृतेरासुरमतत्वम्

गोपिकां चैव लिप्यन्ति न तत्रापि हि चन्दनम्। आग्रहादेव देशेऽस्मिन् विना मानं भणन्ति हि॥ ५६॥

नैवोच्यते विशेषस्तु ब्रह्मचारिण एव हि। कुत्रापि चोच्यते साम्यात् त्रिपुण्डं यत्र कुत्रचित्॥५७॥

तदासुरिवमोहाय ग्रन्थेऽन्यत्र निगद्यते। असुराणां मोहनार्थं त्रिपुण्डुं विहितं पुरा॥५८॥

तित्तपुण्डं न कुर्वीत सम्प्राप्ते मरणेऽपि च। तद्गृह्मचारिणो नित्यमूर्ध्वपुण्डो विधीयते॥ ५९॥

# १८ मूलमन्त्रेण तर्पणम्

ततस्तु मूलमन्त्रेण तर्पयामियुतेन तु। तर्पयेत्परमं देवं नारायणमनन्यधीः॥६०॥

पुनराचम्य कौपीनमङ्गवस्त्रं निपीड्य च। विधूय पुनराचम्य मृदं प्रक्षाळयेत्ततः॥ ६१॥

नोचेच्छौचाच्छुचिर्नैव ध्यात्वा देवं हृदि स्थितम्। तीर्थस्थमभिवन्द्याथ गच्छेद्देवालयं प्रति॥६२॥

मठं वा यदि सम्यक्त बुद्धेरेकाग्रता भवेत्। सदण्डस्तु गुरूञ्ज्येष्ठान् पूर्ववचाभिवन्द्य ह। कौपीनादि च विस्तृत्य देवायर्ग्यं प्रदीयताम्॥ ६३॥

# १९ तुलसीनिर्माल्यधारणम्

त्यक्तवा पुष्पाणि शिरसि धारयन् कर्णयोरपि।

जिग्रेत्पौराणिकान् स्लोकान् प्रामाण्याय वदामि च॥६४॥

## २० तुलसीनिर्माल्यधृतौ प्रमाणम्

पूर्वविद्धा यथा नन्दा शतजन्मार्जितं फलम्। तथा दहति पापं च तुळसी मूर्ध्वि संस्थिता॥६५॥

निर्माल्यं वासुदेवास्य कर्णयोर्मूर्ध्नि वा गळे। तुळसी तु विशेषेण याम्याः किं तस्य कुर्वते॥ ६६॥

नैवेद्यमुदरे विष्णोर्मुखे नाम तथैव च। पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः॥६७॥

## २१ जपार्थमासनम्

अथ शुद्धस्थळे शुद्धपीठे तूपिवशेद्रहः। पद्मस्वस्तिकवीरह्वा आसनेषु प्रधानकाः॥ ६८॥

तेषामेकतरं भाव्यं मनो यत्र प्रसीदति। प्राङ्मुखो वाथवोदङ वा प्रागुदङ्मुख एव वा॥६९॥

# २२ गुरुवन्दनपापनिरसनादि

अभिवन्द्य हरिं चैव गुरुं चापि यथाक्रमम्। अथात्मशुद्धये कुर्याच्छोषणं दहनं स्नुतिम्॥ ७०॥

#### २३ तत्वन्यासादि

तत्वन्यासं चाक्षराणां प्राणायामो भवेदथ।

२४. जपः

पञ्चाङ्गमूलन्यासौ च ध्यायेदक्षयमच्युतम्॥ ७१॥ सच्चिदानन्दरूपं तु ब्रह्म दिव्यं सनातनम्। यथोऽदितं तु गुरुणा यथायोग्यं यथामति। यावत्तु दृष्यते रूपं तावद्धानं ततः परम्॥ ७२॥

#### २४ जपः

जपेदेकाक्षरं मन्त्रमन्यान् मन्त्रानिप भ्रुवम्। विग्नशान्त्यै तथान्नादेःकर्मणोऽभिभवाय च। प्रीत्यै हरेर्देवगुरोस्तत्प्रसादाद्विमुच्यते॥ ७३॥

# २५ हंसव्यतिरिक्तानामर्ग्यादि

हंसाद्यो यतिरन्यश्व प्रोक्ष्याद्भिस्तत आचमेत्। मनुना च ततः प्रोक्ष्य दद्यादञ्जलिमञ्जसा॥ ७४॥

सव्याहृत्या तु सावित्र्या सप्तव्याहृतिपूर्वया। त्रिज्ञोन्ते मनुनावृत्त्या विष्णवादीश्च प्रतर्पयेत्॥ ७५॥

#### २६ गायत्रीजपः

ततो जपेच सावित्रीं तिष्ठन्नेवोदयाद्रवेः। अष्टोत्तरं सहस्रं वा शतं वोदयतः परम्॥ ७६॥

# २७ गृहस्थादीनां दिगुपस्थानम्

निषीदेद्वा ततस्तिष्ठन्नादित्यमुपतिष्ठते। अभिवन्द्य ततो दिक्पान् तथा सर्वाश्च देवताः। परिवृत्य ततो देवं नाम्ना समभिवादयेत्॥ ७७॥

# २८ यतीनां दिगुपस्थाननिषेधः

हंसादीनां यतीनां तु नाभिवादनिमध्यते। प्रणमेच्च ततः सम्यगुणविदय जपेन्मनुम्॥ ७८॥

#### २९ अष्टाक्षरादिजपः

ततस्त्रिगुणमष्टार्ण (ङ्ग) मन्यमन्त्रांश्व सञ्जपेत्। मोक्षदान् कामदंश्वापि यथाकामं तु वैष्णवान्। हरिं नमेत्ततो देवान् परिवारान् हरेः प्रियान्॥ ७९॥

#### ३० शास्त्र श्रवणव्याख्यादि

कुर्यात्तु परविद्याया व्याख्यां श्रृण्वीत वाथ ताम्। अथवा वेदिशरसां भाष्याणां भारतादिनाम्॥ ८०॥

वैष्णवानां निर्णयत्वात् पूर्वोक्तानां विशेषतः। ब्रह्मचारी ह्यभीयात्तु दैवतोऽशक्यता यदि॥८१॥

श्रृण्वीत परविद्यां वा नान्यित्कञ्चित्समाचरेत्। ईक्ष्य (क्ष्या) सन्धिं हरिं चाद्यं गुरुं स्वगुरुमेव च॥८२॥

द्विचतुर्विंशदथ वा चतुर्विंशत्तदर्धकम्। नमेदेतानतोर्ध्वं वा तदर्धं सर्वथा नमेत्॥ ८३॥

#### ३१ शान्तिपाठप्रकारः

शिष्यो गुरुश्व भूमो हि पादौ स्थाप्य समारभेत्। जान्वोरन्तस्थबाहुभ्यां सङ्गह्य ग्रन्थमञ्जसा॥ ८४॥

स्थितं कवळिकादौ हि तथान्तेऽप्येवमेव हि। श्रृण्वीत क्षिप्रमेवाथ मध्योऽप्येवमेव हि॥ ८५॥

### ३२ कलशपूजाविधानम्

मण्डले तण्डुलान् शुद्धान् व्रीहीणामाढकान्न्यसेत्। अष्टाक्षरविधानेन द्वादशार्णेन वा पुनः॥ ८६॥ पूजयेत्केशवदौर्वा प्रतिमासन्निधानवित्। वामे दिव्योदभृत्कुम्भं गन्धपुष्पाक्षतादिकम्॥ ८७॥ तस्मिंस्तु मूलमन्त्रेण शशिबम्बं करे न्यसेत्। गृहीत्वा तन्मुखं विष्णुं स्मरेदष्टाक्षरं जपेत्॥ ८८॥

#### ३३ शङ्खरूपूजा

शङ्कं च पूरयेत्तोयैर्जपेदेतेषु कुम्भवत्। शङ्कं चाद्यादिपात्रेषु कुम्भतोयं विनिक्षिपेत्॥ ८९॥

#### ३४ पाद्यादिपात्राणि

सादयेदात्मनो दक्षे पाद्यदीन् गन्धपुष्पकैः।
दूर्वा च विष्णुपर्णा च श्यामका कन्दमेव च॥९०॥
एतानि पाद्यपात्रणि कुशाग्रतिलसर्पिषा।
यवगन्धाक्षतान् पूर्वफलं चार्ग्याय कल्पयेत्।
लवङ्गजातिकक्कोलद्रव्याण्याचमनीयके॥९१॥

# ३४ पीठपूजाविधिः

मध्ये नारायणं देवं पूजयेद्वामतो गुरून्। दक्षिणे देवताः सर्वा गूरुभ्यः पूर्वपूर्ववत्॥ ९२॥ मूलगुरुं सर्वगुरुमनुज्ञाभिक्तपूर्वकम्।

आञ्चपेभ्योऽग्निकोणेभ्यो गरुडं व्यासमेव च॥९३॥ दुर्गां सरस्वतीं मध्ये परमं पुरुषं यजेत्। आञ्चपेभ्योऽग्निकोणेभ्यो गरुडं व्यासमेव च॥९४॥

धर्मादयः पादरूपा पीठस्य फलकाः परे। परं ब्रह्मैव मध्ये वै क्रमादुत्तरमृत्तरम्॥९५॥

आधारशक्तिं कूर्मं चाप्यनन्तं पृथिवीं तथा। कन्दं नाळं तथा पद्मं क्षीरसागरमेव च॥९६॥

श्वेतद्वीपो मण्टपश्च दिव्यरत्नमयं शुभम्। पद्मं तन्मध्यतः पूज्यं सतारं मण्डलत्रयम्॥९७॥

गुणत्रयात्मिका श्रीश्व तथात्मादिचतुष्टयम्। विमलाद्या अष्टदिक्षु पुरुषश्चेति ज्ञक्तयः। मध्येऽनन्तं योगपीठस्वरूपं मूलमन्त्रतः॥९८॥

# ३६ स्वार्थपरार्थावाहनम्

आवाहयेद्धिरं तस्मिन्नादित्याच्चात्मनो यथा। आदित्यात् स्यात्परार्थे तु स्वयमर्थे तथात्मनः। स्वागतं परया भक्तया ततोऽग्यो द्यैः प्रपूजयेत्॥ ९९॥

#### ३७ आवरणपूजा

श्रियं वामे भुवं दक्षे तन्मुखन्यस्तलोचने। हृदयादींस्तथेन्द्रादीन् दिक्ष्वस्त्रं कोणकेषु च। आत्मादीन्वासुदेवादीन् दिक्षु केशवपूर्वकान्॥१००॥

यथायोग्यस्थितान् दिक्षु मत्स्यादीं स्व तथैव हि। सानन्तं विश्वरूपं स्याच्छङ्कपद्मनिधी यजेत्॥ १०१॥ ३८. धुपदीपौ ५९

दक्षे वामे ध्वजं पृष्ठे पुरतो गरुडं हरेः। शङ्खचक्रगदाब्जानि यजेद्दिक्ष्वायुधानि च॥१०२॥

अनन्तब्रह्मवाय्वीशान् दिक्षु वीशं तथाग्रतः। वारुणीं चैव गायत्रीं भारतीं गिरिजामपि॥१०३॥

कोणेषु वीन्द्रवामे च सौपर्णीं पूजयेदिप । इन्द्रादीन् शेषविध्यन्तान् सभार्यान् सपरिग्रहान्॥१०४॥

अनन्तं वरुणस्यापि निर्ऋतेर्मध्यतो यजेत्। इन्द्रेशानयोर्मध्ये ब्रह्माणं वै प्रपूजयेत्॥ १०५॥

सर्वानभिमुखान्विष्णोः कृताञ्जलिपुटान्यजेत्। पाद्यादिकत्रयं दत्वा धूपदीपं च दापयेत्॥ १०६॥

# ३८ धुपदीपौ

अगरुश्चन्दनोशीरे धूपे साज्यः सगुग्गुळः। चन्दनागरुकर्पूरैश्चर्णं कार्यं समध्यगम्॥ १०७॥

कृत्वा वर्तीस्तु बलिना गृताभ्यक्ताः प्रदीपयेत्। कार्पासमक्षक्षौमं च ज्ञाल्मली क्षीरकोद्भवम्। सम्भोगं कांस्यकं चैव दीपमष्टाङ्गमुच्यते॥१०८॥

# ३९ नैवेद्यम्

नैवेद्यं पायसाद्यं स्यान्नानाभक्षसमन्वितम्। हविष्यं गृतपक्कं च फलानि विविधानि च। अभ्युक्ष्य मूलमन्त्रेण तान्यालभ्य वसञ्जपेत्॥१०९॥

# ४० अनुयागविधिः

समर्प्योक्तप्रकारेण तथाग्नौ जुहुयात्सुधीः। संक्षेपात्तद्विधिं वक्ष्ये वायव्ये वाग्निकोणके॥ ११०॥

उपलिप्य शुचौ देशे कुण्डे वा स्थण्डिलेऽपि वा। संस्कृत्य विधिवङ्गमौ समादध्याद्भुताशनम्॥ १११॥

त्रीणि काष्ठान्युपादाय निदध्याद्रव्यदेवताः। स्मरन् परिसमूह्याय परिस्तीर्य ततो क्षिपेत्॥११२॥

पात्राण्यासाद्य सम्प्रोक्ष्य संस्कृत्याज्यं यथोक्तवत्। गर्भाधानादिसंस्कारान् कुर्यादग्नेः पृथक्पृथक्॥ ११३॥

व्याहृतीभिर्यथाज्येन कुर्यात्पुर्णाहुतीः सुधीः। गर्भाधानं सबः पुंसः सीमन्तो वैष्णवो बलिः॥ ११४॥

जातकं नाम निष्क्रामोऽन्नप्राशं चौलकर्म च। उपनीतिर्महानाम्नी महाव्रतमतः परम्॥११५॥

उपनिषदश्च गोदानं समावर्त्यमतः परम्।

विवाहश्चैवमित्याद्याः कुर्यात् षोडश्रभिः ऋमात्॥ ११६॥

पूजियत्वा हरिं वह्नाविध्मागाराज्यभागकान्। चतुश्चतुः पीठदेवमानं सपरिवारकम्॥११७॥

हृत्वा प्रधानहवनं चतुर्लोकाग्निना कृतम्। पूर्णाहुतिः प्रतिहुतं वषद्गारावसानया॥ ११८॥

जुहुयाद्विष्णुगायत्र्या समिधादिचतुर्ष्वपि। ततः स्विष्टकृतं हुत्वा होमशेषं समापयेत्॥ ११९॥

# ४१ धूपदीपनीराजनानि

ताम्बूलं च सकर्पूरं धूपदीपौ च पूर्ववत्। नीराजनमथो दत्वा पुनः पूर्ववदर्चयेत्॥१२०॥

जितमित्यादिमन्त्रेण प्रदक्षिणनितस्तुतीः। कृत्वा तु चतुरावृत्त्या ततो देवं क्षमापयेत्॥१२१॥

# ४२ पूजाप्रमाणानि

कृत्वा स्नानादि पूजां च हरेः कुर्यात्समाहितः। प्राङ्मुखस्तूपविष्टः सन्ननुज्ञातो हरेर्गुरोः॥१२२॥

हृदि स्थितं हिरं स्मृत्वा प्राणानायम्य च न्यसेत्। पञ्चाङ्गमर्चयेत्सम्यग्देवं सपरिवारकम्॥१२३॥

यथाक्रमेण मोक्षाय सर्वदेवैः समन्वितम्। यथाक्रमेणार्चितव्यो देवदेवो जगद्गुरुः॥१२४॥

#### ४३ मोक्षसाधनकथनम्

प्रवृत्तोक्तं भगवता भाष्यकारेण चोद्भतम्। तत्रोक्तमखिलं कार्यं मोक्षेप्सोः पुरुषस्य हि॥१२५॥

हरिभिक्तः क्रमेणैव तदीयेषु हरिस्मृतिः। हरिस्मृतिस्तत्स्मृतिश्च तत्स्तुतिर्हरिपूजनम्॥१२६॥

तत्पूजा विहितात्याग इति मुक्तेः क्रमेण हि। नियमात्साधनान्येव नित्यसाध्यानि चाखिलैः॥१२७॥

#### ४४ अन्ननैवेद्याभावे विशेषः

पूजाकाले तु नैवेद्यं नो चेत्पुष्मादिनैव तु। कल्पनीयं तथा चोक्तं हरिणैवार्जुनाय वै॥१२८॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्तया प्रयच्छति। तदहं भक्तयुपहृतमञ्चामि प्रयतात्मनः॥१२९॥

यत्करोषि यदश्चासि यज्जुहोषि ददासि यत् । यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥१३०॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः। नैवेद्यं नास्ति चेद्भपदीपौ नैव प्रदीपताम्॥ १३१॥

# ४५ भिक्षुकाणां माधुकरी वृत्तिः

अथ देवोपहारार्थं गच्छन्माधूकरादिकम्। मधूकरस्य योग्याश्च स्मृता व्यासेन धीमता। मैक्षे च बहुधा प्रोक्तं तस्यामेव स्मृतौ स्वयम्॥१३२॥

## ४६ षड भिक्षुकाः

अध्वगः क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः। ब्रह्मचारी यतिश्चैव षडेते भिक्षुकाः स्मृताः॥ १३३॥

#### ४७ पञ्चविधभिक्षाः

माधूकरमसङ्कल्पं प्राक्प्रणीतमयाचितम्। तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पञ्चविधं स्मृतम्॥ १३४॥ ४८. भोजनम् ६३

# ४८ भोजनम्

ततो देवस्य दत्वा तत्सर्वं देवाभ्यनुज्ञया। भुज्जीत तत्प्रसादान्नं यावता कर्म लुप्यते। अदत्वा विष्णवे किञ्चिन्नैव भुज्जीत किञ्चन॥१३५॥

# ४९ भगवन्नैवेद्यमाहात्म्यम्

नैवेद्यभोजने श्रेयः सर्वेषां च तदावदत्। भगवान् व्यासरूपी तु कर्मालेपाय वै सताम्॥ १३६॥

भुत्कान्यदेवनैवेद्यं द्विजश्वान्द्रायणं चरेत्। भुक्तवा केशवनैवेद्यं कोटिकोट्यैन्दवं फलम्॥ १३७॥

ब्रह्मचारिगृगस्थैश्व वानप्रस्थैश्व भिक्षुभिः। विष्णोर्नैवेद्यं भोक्तव्यं नात्र कार्या विचारणा॥ १३८॥

नैवेद्यमुदरे यस्य मुखे नाम हरेस्तथा। पादोदकं च निर्माल्यं मस्तके यस्य सोऽच्युतः॥१३९॥

#### ५० विष्णवनर्पितभोजने दोषः

विष्णोरदत्वा भोक्तुर्हि दोषमाह जनार्दनः। क्रोडरूपो निषादस्य तत्सुताश्व (श्व) ग्रुरस्य च॥१४०॥

### प्रश्र ब्रह्मपारस्तवमहिमा

संवादमुक्तवा लोकेऽस्मिन् सतां तापप्रश्चान्तये। राज्ञा कृता ब्रह्महत्या परब्रह्मस्तवेन तु॥१४१॥ स्तुते हरौ निर्गतास्य क्षणाद्देहान्महात्मनः। स्तोत्रस्य तस्य माहात्म्यत्तथा राज्ञो वरेण च॥१४२॥ व्याधत्वे च सुधर्मज्ञो बभूव च तथाकरोत्। सोऽमावास्यां तथा पुत्र्याः श्व (च) शुरस्य गृहं प्रति॥१४३॥

#### प्र२ व्याधश्वशुरसंवादः

गत्वा तमब्रवीद्धिंसा त्वया न क्रियते किल। जीवानां तन्मयेहाद्य चागतं हिंसया विना॥१४४॥

भोक्तुमुक्केत्यथोऽ(यथा) पृच्छदस्ति हिंसां विना परम्। यत्किञ्चिदिति तेनोऽक्तो व्रीहींस्त्वस्य त्वदर्शयत्॥१४५॥

व्रीहिस्थजीवहिंसायाः प्राप्यत्वात्तेन धिक्कृते। पुनरन्यां स्तुवन्यान्वै दृष्ट्वा तांस्तु ततोऽधिकम्॥१४६॥

धिक्कृत्यायात्स तु व्याधः तत्पुत्र्याः श्वशुरोऽपि च। अन्वेव गत्वा तत्सर्वमश्रृणोत्परमं शुभम्॥१४७॥

इदं सर्वं हरेर्ब्रह्मा पूजार्थमसृजत्प्रभुः। सृष्ट्वा सर्वं हरेर्ब्रह्मा पूजां च चक्रुपे स्वयम्॥१४८॥

तथैव चक्रृपेऽन्येषां ततस्तेषां च भोजनम्। तद्दातव्यं हरेः सम्यगन्यथा पापमाप्नुयात्॥१४९॥

अहमेकं मृगं हत्वा चार्पयामि हरेः प्रभोः। ततोऽतिथिस्वकीयैश्च(कैश्चैव) भोक्ष्यामीति तदीरितम्॥१५०॥

श्रुत्वा तथैव कृत्वा च विष्णुलोकमवाप्तवान्। इत्यादि च तथान्यत्र स्मृताविप हि विद्यते॥१५१॥

भगवन्निवेदितभोजने प्रमाणान्तरम्। प्राणानां जुहूयादन्नं मन्निवेदितमुत्तमम्। तृप्यन्ति सर्वदा प्राणा मन्निवेदितभक्षणे॥१५२॥

ममापि हृदयस्थस्य पितृणां च द्विजातिनाम्। सदा प्रीतिप्रदं पुण्यं मिन्नवेदितभोजनम्॥ १५३॥

तथैव भारतेऽप्युक्तं देवदेवेन विष्णुना।

तत्र वेदविदः शान्ताः सप्त चित्रशिखण्डिनः॥१५४॥

प्रापणं भगवद्भक्तं भुञ्जने चार्ग्यभोजनम्। तस्मात्सर्वे (सर्वे देवा) विष्णुनात्तमञ्चन्ति विष्णुना ग्रातं जिग्रन्ति। विष्णुना दृष्टं पश्यन्ति विष्णूना श्रुतं श्रृण्वन्ति। तस्माद्विद्वांसो विष्णूपहृतं भक्षयेत्। अब्रवीदेवमेवापि महोपनिषदादरात्॥१५५॥

# प्र३ प्राणाग्निहोत्रम्

यतेः परमहंसस्य भिक्षाया एकवर्णतः। पर्यक्षणोक्षणे स्यातां तेनैवाथोऽष्टशो (तेनैवाथोऽष्टादशो) जपेत्। सङ्गह्य भोज्यं चाचामेत्तथैवाहुतयः स्मृताः॥१५६॥

# ४४ प्राणाद्याहुतावङ्गुलिब्यवस्था

षड्वा पञ्च हरिः प्रोक्तः प्राणादिमनुभिः स्वयम्। सर्वथा न स्पृशेदन्नं जुषध्वं वचनात्पुरा॥१५७॥

मध्यमाभ्यां भवेन्मध्यतर्जनीभ्यां तथैव च। कनिष्ठोपकनिष्ठाभ्यां योगोऽङ्गुष्ठस्य सर्वज्ञः॥१५८॥

तर्जनीयुतमध्याभ्यां सर्वाभिस्त्वाहुतिक्रिया। ततस्राङ्गुष्ठमध्याभिः सर्वाभिर्वा यजेद्धरिम्॥१५९॥

हृदिस्थं न तले स्पृश्याद्धविरस्यान्न पातयेत्।

होमवत्पृथिवीस्थं च दक्षपादं तु संस्पृशेत्॥ १६०॥

# प्रप्र भोजनान्ते हस्तादिक्षालनम्

सव्येनैव तथाचम्य हस्तं प्रक्षाल्य च त्रिशः। संशोध्य चाम्बुना चास्यं धावनं च दतां भवेत्॥१६१॥ उदेन भूयो नवशस्तत आचमनं चरेत्। उद्भुत्य पात्रं लिप्ते तु स्मृत्वा विष्णुं ततो व्रजेत्॥१६२॥

#### प्र६ उपस्थानं तर्पणं च

मध्यो निष्क्रियादन्ययन्यादीनां भवेत्सदा।
उपस्थानं तु सर्वेषां विष्णवाद्यं देवतर्पणम्॥१६३॥
आर्षं च पैतृकं चापि यत्यन्येषां विधीयते।
स्वाध्यायोऽप्यग्निकार्यं तु ब्रह्मचारिण एव हि॥१६४॥

#### प्र७ वैश्वदेवविशेषः

विननां वैश्वदेवं तु वन्यैर्द्रव्यैर्विधीयते। गृहिणो वैश्वदेवं तु ग्राम्यैरन्नैर्विधीयते॥१६५॥

देवर्षिपितृभूतानामितथीनां च सर्वशः। वनस्थगृहिणोर्यज्ञः सर्वथा हि विधीयते॥१६६॥

# प्रद सन्यासिप्राणाहुतिः

अन्नाभिमर्जानो मन्त्रः सर्वेषां निष्क्रियं विना।

प्राणादिमन्त्रा होमे च परमात्मयुताः सदा॥१६७॥ प्राणाग्निहोत्रविषये विशेषोऽस्ति सदातनः। नवक्षेत्रोपदेशेन गम्यत्वाच्च सदैव हि॥१६८॥

# प्र भोजनान्तकर्तव्यम्

भवेच पुनराचामस्ततः सर्वे हरिं परम्। स्मृत्वा विद्याविनोदेन कुर्युर्वै कालयापनम्॥१६९॥

अथास्तमित आदित्ये चैवमेव विधीयते। अनुष्ठानं प्रायज्ञो हि न विज्ञेषो हि निष्क्रिये। आश्रमाणां त्रयाणां वा अग्निकार्यादि पूर्ववत्॥१७०॥

#### ६० स्वापकालः

विद्ययैव ह्यर्धरात्रिपर्यन्तं नैव च स्वपेत्। गटिकादशपर्यन्तमथ वा हरिमञ्जसा। स्मृत्वा निद्रां प्रकुर्वन्वै प्रबुद्धोऽतन्द्रितो मुहुः॥१७१॥

# ६१ कालसार्थक्यकरणम्

स्तुवीतैव रमेशं स एनं मुक्तं करिष्यति। एवं भवेन्नित्यकर्म न वृथा कालयापनम्। कुर्यात्तथापि विष्णुं च सर्वदा संस्मरेत्तथा॥१७२॥

#### ६२ एकादश्युपवासः

एकादश्युपवासश्च सर्वेषां सर्वथा भवेत्। यत्किञ्चिच न भक्षेत शुभेप्सुः सर्वथा दिने। तस्मिंस्तु मृतिपर्यन्तं रोगाभावे पुमान् क्वचित्॥१७३॥

# ६३ विष्णुपञ्चकोपवासः

अमावास्यां च पूर्णायां श्रवणे चापि शक्तितः। उपवासो भवेत्तद्बत्संकान्त्यामात्मशुद्धये॥१७४॥

उत्तरायणसंक्रान्त्यामुत्तरं हि फलं भवेत्। दक्षिणायनसंक्रान्त्यां फलं सर्वमधो भवेत्॥१७५॥

अन्यत्रापि यथा स्कान्दे प्रोच्यते तद्भदेव तु। उपवासस्स विज्ञेयस्तदप्यत्र वदामि च॥१७६॥

# ६४ विष्णुपञ्चकोपवासे वेधविचारः

तिथयो पूर्वविद्धास्तु सर्वा वर्ज्या उपोषणे। उदयस्पर्श्वानी वर्ज्या दर्शे सर्वत्र पण्डितै:॥१७७॥

अन्यास्तु यामसंस्पृष्टा उदयात्प्रागापि ध्रुवम् (वर्ज्यैवैकादशी तिथिः)। उदयानन्तरं यामव्यापिन्यो भाः प्रकीर्तिताः॥१७८॥

#### ६५ श्रवणाद्युपवासः

मध्याहूव्यापिनी श्रोणा सदोपोष्या विचक्षणैः। मुहूर्तद्वयसंस्पृष्टा वर्ज्यैवैकादशी तिथिः॥१७९॥

इति पापकुसूलत्वं प्रोच्यते वैष्णवे दिने। उपवासविहीनस्य तत्रतत्र च सादरात्॥१८०॥

#### ६६ हरिवासरः

एकादश्याः प्रान्तभागो द्वादश्याः पूर्व एव च।

हरिवासरनामासौ सर्वकालोत्तमः स्मृतः॥१८१॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।

तस्मिंस्तु भुञ्जनः पापान्येकस्थानि भवन्त्युत॥१८२॥

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च। अन्नमाश्रित्य तिष्ठन्ति सम्प्राप्ते हरिवासरे॥१८३॥

#### ६७ एकादश्युपवासमाहात्म्यम्

रुद्रोऽपि सर्वदेवानामात्मनः सर्वदेहिनाम्। एकादञ्युपवासे च कर्तव्यत्वेन शंसति॥१८४॥

या तिथिर्दयिता विष्णोः स तिथिर्मम वल्लभा। सतां नोपोषयेदास्तु स पापि श्वपचाधिकः॥१८५॥

स्कान्द आह तथा रुद्रो जायायै शुभकमर्कणः। हानिस्सर्वस्य वेदे तु दशम्या यदि दूषिते॥१८६॥

शुभवृद्धिं तथा चाह तद्विनैव परे दिने। उपवासे तु ते वक्ष्ये तदप्यत्र शुभाय वै। यत्तु जन्मसहस्रोण सदा पुण्यार्जितं फलम्॥१८७॥

# ६८ विद्धैकादशीवर्जनम्

अरुणोदयविद्धाया उपवासाद्ध्यपोहति। निवारितस्तु विद्धद्भिः जन्मकोटियुतं फलम्॥१८८॥

यदनादिकृतं पुण्यं परं यच्च करिष्यति। तर्त्स्वं विलयं याति परेषामुपवासनात्॥१८९॥

एवं विद्धां परित्यज्य द्वादश्यामुपवासने।

कोटिजन्मार्जितं पापमेकयैव विनश्यति॥ १९०॥ ततः कोटिगुणं वापि निषिद्धस्य च वर्जने। यदनादिकृतं पापं तद्द्र्ध्वं यत्करिष्यति॥ १९१॥ तत्सर्वं विलयं याति परेषामुपवासनात्। न च तस्मात्प्रियतमः केशवस्य ममापि वा॥ १९२॥ अन्यदैवतसामान्यं यदि विष्णोर्न पश्यति। गुरून्वा नावजानाति न चैनं वेत्ति मानुषम्॥ १९३॥ तस्माङ्गद्रे सदा कार्यं विद्धायां वर्जनं त्वया। प्रीत्यर्थं मम देवेशि तथा नारायणस्य च॥ १९४॥

#### ६९ श्रवणद्वादशी

द्वादशीं श्रवणोपेतां नोपोष्याद्यः सुमन्दधीः। पञ्चसंवत्सरकृतं पुण्यं तस्य विनश्यति॥ १९५॥

# ७० चतुर्मास्यव्रतारम्भः

एकत्र वर्षास्वृतुषु श्रयानं स्वेच्छया हिरम्। शेषभोगे श्रिया सार्धं विनिद्धं ज्ञानरूपिणम्॥१९६॥ करामलकविद्धश्चं पश्यन्तं सर्वदैव च। वसेदनुव्रती धीर एकादश्यां हिरं यजेत्॥१९७॥ नारायणं तदैवाद्धा स्वीकृर्यात्सर्वथा व्रतम्। पौर्णमास्यां निशायां तु यजेन्नारायणं प्रभुम्॥१९८॥ इन्दिरासंयुतं दन्तकाष्टाद्यं तस्य चार्पयेत्। प्राणिनां सम्भवात्पूर्वं मृदं चैकत्र निक्षिपेत्॥१९९॥ चातुर्मास्ये नवीनमृद्ग्रहणादिनिषेधः। नान्तरान्यमृदं गृह्यात्(ग्राह्यं) दन्तकाष्ठानि चापि वा। तत्पूर्वं संस्मृते स्थाने कदाचिन्न विरुद्धते॥ २००॥

# ७१ चातुर्मास्यकालावधिः

ऋतुमेकं तथा द्वौ वा वसेदेवं समाहितः॥ २०२॥

#### ७२ चैत्रादिमासगणना

चित्रादि तारकाद्वन्द्वं यदा पूर्णेन्दुसंयुतम्। चैत्रादिमासा विज्ञेयाः पञ्चषण्णतमास्त्रिभिः॥ २०३॥

#### ७३ अधिकमाससंसर्पे

अधिकमासे समुत्पन्ने मासांस्त्रीन् पञ्च वा वसेत्। अधिकमासमृते सङ्ख्या स्यादृत्नां सदापि च॥२०४॥

#### ७४ संसर्पाहस्पतीमासौ

यस्मिन् मासि न संक्रान्तिः संक्रान्तिद्वयमेव वा। संसर्पाहस्पती मासाविधमाससमौ स्मृतौ॥ २०५॥

#### ७५ अधिमासः

द्विचन्द्रप्रभवः प्रोक्तो ह्यधिमासोऽपि सूरिभिः। उक्तर्क्षेषु यदा पूर्णा द्वयमेव भविष्यति॥२०६॥

तदाधिमासो विज्ञेयः सर्वलोकेषु गर्हितः। तदन्ते वपनं कृत्वा व्रजेत्तस्माच्च तद्दिने॥ २०७॥

#### ७६ क्षौरदिनम्

यितः सर्वोऽपि पूर्णायां क्षौरं कुर्यादृतुं प्रति। पौर्णमास्यामशक्तश्चेत्कुर्यादेव परे दिने। यदि तत्रापि पञ्चम्याःपूर्वमेव तु सर्वथा॥ २०८॥

#### ७७ कृष्णाष्टमीव्रतम्

सिंहमासे तु रोहिण्या युतां कृष्णाष्टमीं पुमान्। उपोष्य मध्यरात्रे च पूजयेन्नन्दनन्दनम्॥ २०९॥

यशोदासंयुतं तल्पे शयानं तु चतुर्भुजम्। शङ्खचक्रगदापद्मधरं ज्ञानस्वरूपिणम्॥ २१०॥

क्षीरपायसमध्वाद्यैर्नवनीतयुतैस्तथा। अपूपकादलाद्यैश्च मातुलङ्गसितादिभिः॥ २११॥

सुमनोभिस्तुलस्यादिदशभिर्गन्धसंयुतैः। अर्चयित्वा परेद्युश्च प्रातरेवाथ पूजयेत्॥ २१२॥

#### ७८ नवरात्र्यां व्यासपूजा

एवं भाद्रपदे मासे नवम्यां सितपक्षके।

ग्रन्थानेकत्र संस्थाप्य वस्त्रैः सञ्छाद्य सर्वज्ञः॥ २१३॥

व्यासं परशुरामं च पूजयेत्तेषु भिक्ततः। द्वाविंशभेन यद्युक्ता उपवासो विधीयते॥ २१४॥

बादिरं जैमिनिं चैव सुमन्तुं वैशम्पायनम्। आश्मरथ्यं च पैलं च काशकृत्स्नं च लोमश्रम्॥ २१५॥

पुरैतान् लोकपालेभ्यो यजेद्वासस्य शिष्यकान्। प्रतिमायां चैवमेव यजेदेते हरेस्तनू। यजनं परिवाराणामेकदा वा भवेद्वयोः॥ २१६॥

# ७९ भगवत्प्रार्थनम्

विद्या भिक्तं गुरौ विष्णौ तयोरात्मन्यनुग्रहम्। वृण्वीत परमार्चा (वरमर्चा) तु प्रातरप्येवमिष्यते॥ २१७॥

एवं हरिं पुमानर्च्य (तु नानार्चा) सुनित्यानित्ययोगतः। अनुचानो वैष्णवानां ग्रन्थानां प्रीणयेद्धरिम्॥ २१८॥

विद्यादानेन भक्तया च पूजाध्यानजपैः सदा। मतिस्तुतिभ्यां कृष्णोऽस्य सुप्रीतो मुक्तिदो भवेत्॥ २१९॥

#### ८० शिष्यस्य अभिषेकप्रकारः

श्रुतग्रन्थमृजुं सौम्यं प्रवीणं निष्क्रियं यतिम्। योगपट्टेन नाम्ना वै युक्तं कुर्यादृरुर्महान्॥ २२०॥

शुभे दिने प्रातरेव व्यासरूपं हिरं यजेत्। पूर्वोक्तेन विधानेन नैवेद्यं पायसादिकम्॥ २२१॥

दत्वा पूज्य पुनर्मन्त्री शिष्यं चात्र हरेरुप।

स्नातं यथावदाचान्तं प्राङ्मुखं चोपवेदय च॥ २२२॥
शङ्कोदेनैव सम्प्रोक्ष्य कृत्वा चाथाभिषेकिणम्।
पाराद्यार्यस्य मनुना व्याससं तद्भृदये यजेत्॥ २२३॥
यथापूर्वं ततस्तस्य तीर्थयुक्तं भवेदथ।
सर्वशुद्धिकरत्वात्तु तीर्थाख्यो विष्णुरुच्यते॥ २२४॥
तत्तन्नामाख्यतीर्थेन हरिणा संयुतस्त्वित।
अनेन हरिणा चायं तीर्थभूत इतीरितः॥ २२५॥
अर्थस्तथान्यनाम्नोऽपि तत्तज्ज्ञानीति वा भवेत्।
योगपट्टं प्रदातव्यं व्याख्यालिङ्गे तथास्ति चेत्॥ २२६॥

#### **८१ व्याख्यानप्रकारः**

अथ व्याख्यां सदा कुर्यात् सिच्छिष्याणां सदा स च। उत्तमत्वस्य सर्वस्मादृणपूर्तेस्तथैव च॥ २२७॥

दोषायुक्तस्य च हरेरिवरोधे न बुद्धिमान्। ब्रह्मादितारतम्यस्य यथा रोधो न जायते। महातात्पर्यमेतिद्धि तस्मादेवं वदेद्धधः॥ २२८॥

#### **५२ यतिनियमः**

भूतं किमिप न दृह्यान्न वदेत्परुषं वचः। किञ्चिच नापि कुद्धोत जपकाले तु देवताम्। विना नान्यं चिन्तयीत चिन्तिते निष्फलं भवेत्॥ २२९॥

#### **८३ यतिनिषिद्धानि**

पतितान्नं न भुझीत द्विषदन्नं तथैव च।

लशुनं गृञ्जनं चैव कोविदारपलाण्डुके॥ २३०॥

करञ्जोदुम्बरालाबून् बृहन्निष्पावमेव च। न भुञ्जेद्यदि भुञ्जीत प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ २३१॥

श्वेतवृन्ताकतैले च हिङ्गुं चैव मसूरिकाम्। निष्पावमाढकीं चैव कुलस्थं नैव भक्षयेत्॥ २३२॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत्। केशजं तु स्वेदजु (दु) ष्टं भूयः पक्कमसंस्कृतम्॥ २३३॥

सव्यहस्तेन नैवाद्यादुभाभ्यां च तथैव ह। तिष्ठन् शयानो नैवाद्याद्गच्छन्नशुचिरेव च॥ २३५॥

सन्ध्याकालेषु च त्रिषु नैवाद्यात्कश्चन क्वचित्। इत्याद्यास्तु यदाचाराः ज्ञेयाः क्रुप्तास्तु विष्णुना॥ २३६॥

#### **८४** सदाचारकथनम्

कार्यस्तु सर्वदा सिद्धः महिद्धर्यदुदाहतम्। कार्यं तदेव चीर्णं न कार्यं धर्मबहुत्वतः॥ २३७॥

देशतः कालतश्चैव पुरुषादापदस्तथा। सर्वैर्धर्मस्य वेत्तुस्तदशक्यत्वान्न कार्यता॥ २३८॥

तस्य तस्मान्महत्प्रोक्तमाचारं सर्वदाचरेत्। वयं तु महतां पादपांस्वनुग्रहयोगिनः॥ २३९॥

नारायणाय सततं विधिश्ववंशक्रस्यादिभिः सुरगुणैर्मनुजैश्व नित्यम्।

सिद्धर्मुनीन्द्रकगणैर्हरिकर्मसंस्थैः संसेव्यमानचरणाय नितं करोमि॥ २४०॥

॥ इति श्रीमद्विष्णुतीर्थीयसन्यासपद्धतौ आचारकथनं नाम तृतीयाऽध्यायः॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

# अध्यायः ४

# चतुर्थोऽध्यायः

अजादिदेवैः सुरगायकैश्व मुनीन्द्रयुक्तैर्मनुजैः सवर्णैः। व्रतादिभिस्त्वाश्रमसंयुतैश्व संपूज्यमा (चा) प्यं सुखदं च वन्दे॥१॥

### १ सन्यासग्रहणकालनिर्णयः

अर्चन् सदैवं परमं गृहस्थः सुते युते प्रियया प्रव्रजेच। विरक्तश्चेदन्यथा वापि गच्छेद्विष्णोः क्षेत्रं व्याधिपीडादिहीनम्॥२॥

# २ अशक्तविषयकथनम्

अशक्तश्चेद्यदि गन्तुं गृहस्थो वीतस्नेहो नित्यमर्च्याद्धिरं सः। काले मृतेः सर्व ए (मे) वापि विष्णोः क्षेत्रे गृहे वापि तदन्यदेशे॥३॥ स्नात्वाचम्याथोपविश्याथ पीठे यथायोग्ये सिच्चदानन्दरूपे। आत्मोपेते विषयेभ्यो मितं स्वां हृत्वा विष्णौ निश्चलां धारयेच्च॥४॥

#### ३ ध्येयविष्णुस्वरूपकथनम्

उत्क्रान्तिकाले हृदिपङ्कजेऽथ स्वमूर्तिमध्यस्थहरिं च देवै:। ब्रह्मादिभिः पार्श्वगभूरमाभ्यां युतं सदात्मानमवेक्ष्यमाणैः॥५॥ नखेन्दुसंशोभिमणिप्रवेदयुताङ्गलीभिर्विलसत्पदेन। तलेन रक्तेन च संयुतेन ब्रह्मादिभिः पूज्यतमेन नित्यम्॥६॥ सुवृत्तजानुद्वयसंवृतेन पीनोरुयुग्येन च संयुतं तम्। कट्या च कंच्या परिरम्भितेन पीताम्बरेणावृतया समेतम्॥ ७॥ नाभिद्भदेनापि सुवृत्तकेन पाणोरिवाविष्टमहाण्डकेन। तुन्देनलोकार्तिहरेण चैव विज्ञानबुद्धादिहृदा च युक्तम्॥८॥ वनाख्यमालालयुतहारकेण देदीप्यमानेन परार्ग्यकेन। श्रीवत्सभूत्या च सदा युतेन युतं चकासत्पृथुतुङ्गवक्षसा॥ ९॥ रमाधराभ्यामथ पार्श्वगाभ्यामङ्काश्रिताभ्यां वरवेषयुग्भ्याम्। पीनेन पृष्ठेन सुविस्तृतेन मण्युत्तमालङ्कतमध्यरज्वा॥१०॥ रत्नाद्धचैत्यात्मककौस्तुभेन विलासिकण्ठेन तथान्यनिष्कैः। निकृत्तदेवारिशिरोरिणा च सहस्रभानोरिव दीपितेन॥११॥ हरेर्मुखाप्तातिरवेण दैत्यविभीषकेणापि च मारकेण। क्षीरोपमेनाथ दरेण नित्यं सुरारिरक्ताइङ्तधारया सदा॥१२॥ अयोमयीगदयानद्धकोट्या जाम्बूनदेनापि वराम्बुजेन। उन्मीलितास्नानसुशोभिलीलासुकम्पितेनापि करेषुयुक्तम्॥ १३॥ मुखाम्बुजेनापि सुगण्डकेन चलत्सुनिर्भातसुकुण्डलेन। स्मिताद्यरक्तोष्ठविभानतोऽञ्जरशोणायितार्ग्यद्विजपङ्किना च॥१४॥ उदारनासेन तथाब्जनेत्रद्वयेन दीर्गेण सुचञ्चलेन।

कटाक्षमात्रेण विरिच्च शर्वशकादिकैश्वर्यविधायकेन ॥ १५ ॥

नानामणिव्रातसुलोचनाढ्यिकरीटनिष्केण युतं सुरोत्तमम्। महाविभूषादिविभूषणाङ्गं परं पदं वैष्णवमेव चिन्तयेत्॥१६॥

#### ४ मरणानन्तरभाविमार्गस्मरणम्

वेः सुतं त्वर्चिषमेव पूर्वं तथैव वायोः सुतमातिवाहम्। अहस्तु पक्षं सितमेव चोदक्संवत्सरं तिटतं वारि पञ्च॥१७॥ प्रजापितं सूर्यमथापि सोमं वैश्वानरं चेन्द्रमथो ध्रुवं च। देवीं दिवं वायुमथो हिरं च क्रमेण मार्गानिप संस्मरेत॥१८॥

# प्र देहादुत्ऋान्तिकथनम्

मूलस्थवायुं अनकैर्व्रजन्तं नाभिं ततो हृदयं विष्णुनैव।
ततो हिरं चात्मसुरेअयुक्तं नाड्या तदोकोज्वलनावभासया॥१९॥
सुषुम्नया क्रमयोगेन गत्वा विधाय मूर्धानमभिव्रजन्तम्।
ध्यायेद्धिरं सुष्टु गुरूक्तमार्गाद्रमादित्लान्तजगिद्धभिन्नम्॥२०॥

# ६ गृहस्थस्य मरणकाले कर्तव्यकथनम्

तथैव चाग्नित्रयसंयुतोऽपि न्यस्तुं न शक्तो यदि वेदिमध्ये। आस्तीर्य दर्भानपि चैकमेव निरस्य तेषूपविशेच मन्त्रात्॥ २१॥

स च न्यसिष्णुर्जुहुयाचा जुह्वा पूर्णाहुतिं त्वृत्विजा वेदिमध्ये। विद्याथ जाग्रत्परतो दिनादाविष्टिं प्रकुर्यात्परमं स्मरन्सः॥ २२॥

वैश्वानरोऽजीजनदेव पृष्ठो दिवीति पूर्वत्र पुरोऽनुयाज्ये। प्रजापतेनेति तवेम इष्टिं अन्तऽग्निमावाहयति स्व आत्मन्॥ २३॥

तथैव चौपासनवनिऐव युक्तोऽिप वेर्जगने निवेश्य। अन्योऽिप चैवं यदि नैव शक्यं स्थातुं गृहान्कश्चन संस्मरेत्तम्॥२४॥

#### ७ भगवज्ज्ञानादेव मोक्षकथनम्

ये ये हिरं सर्वजगद्धिरष्ठं सुपूर्णविज्ञानसुस्रैकरूपम्। व्यासोक्तसूत्रेषु यथैव वेदिशरस्सु शास्त्रे च सुतत्ववादे॥ २५॥ सभारते पञ्चरात्रे यथैव निगद्यते तं परमं तथैव। ज्ञात्वा तमर्चन्ति तमाप्नुयुस्ते नैवान्यमार्गेण परः स वेद्यः॥ २६॥ यथैव चाहुः परमं तु वेदाः सूत्रान्यथो पञ्चरात्राणि चैव। पुराणयुक्तानि तु भारतानि तथैव सम्यग्गि विवेचयिष्यन्॥ २७॥

#### ८ भाष्यकारकृतग्रन्थकथनम्

ऋचां तु भाष्यं स चकार सम्यक्तथारणानं वरसूत्रकाणाम्। सारं च तन्त्रस्य च भारतस्य संक्षेपमानन्दयुताम्बुसंज्ञः॥ २८॥ यथैव यद्दस्तु तथैव चोक्ते तत्तत्त्ववादोऽस्विल एव पुंसाम्। ज्ञेयश्व कार्यः परमादरेण संसाराब्धेस्तर्नुमत्यन्तदुःस्वात्। निष्क्रम्य देहात्स पुरोदिवेन पथा हरिं प्राप्य सुस्वं रमेच्च॥ २९॥

# ९ गुहस्थादिदेहदहनकथनम्

ततो विना यतिदेहं दहेयुस्तदीयका मन्त्रपुरस्सरा वै॥ ३०॥

#### १० यतिदेहस्य वृन्दावनकरणकथनम्

देहं यतेः शिष्यवराः सुशुद्धाः स्नातास्ते तं स्नापयित्वा हरेस्तु। पादोदकेनैव च वासुयेयुं कौपीनमन्यच्च तथैव वस्त्रम्॥ ३१॥ पूर्वोक्तमार्गेण च गोपिकां च लिस्वा तुलस्यादिसुपुष्पकाणि। धृतानि कृष्णेन च धारयेयुर्वस्त्रेण सञ्छादा च सञ्जपेयुः॥ ३२॥

सूक्तं हरेः पौरुषमेव सर्वे ततो नयेयुर्जलधेश्व तीरम्। ज्ञिक्ये तु पीठं सुदृढं निधाय योगारूढं तत्र संवेज्ञयेयुः॥ ३३॥

भेरीमृदङ्गादिरवेण युक्ताः सूक्यानि विष्णोश्च सदा जपन्तः। नीत्वा गर्तं तत्र नीचं सुस्रात्वा लिप्त्वा च सर्वत्र च गोमयेन॥३४॥

सम्प्रोक्ष्य सर्वत्र च पञ्चगव्यं क्षीरादिना पौरुषेणोपवेश्य। योगारूढं प्राङ्मुखं पीठ एव जस्वा सूक्तं तित्त्रिशः सर्वशिष्याः॥ ३५॥

विदार्य मध्यं ज्ञिरसः पुरोऽस्य निधाय दण्डं च मृदा सुपूर्य। स्वातं पुरा यद्यगवर्षवासस्तुषाग्निनेषत्तु दग्ध्वेव पूर्यम्। (स्वातं पवाद्यगवषवातस्तुषाग्निनैवत्तु तथैव पूर्या)॥ ३६॥

अब्धेः समीपे यदि नीरतीरे नद्य (द्या) स्तथा क्षेत्रवरेऽपि वा स्यात्। रक्षां च कृत्वारुमसुकण्टकाद्यैः स्वकीयगेहानि च ते व्रजेयुः॥ ३७॥

# ११ वृन्दावनस्थभगवत्पूजाविधानम्

स्थिरादिकासु प्रतिमासु सम्यग्गन्धाक्षते (ष्टके) नापि सुपुष्पकेण। भक्त्या चिदानन्दरसानिरुद्धप्रद्युम्नसङ्गर्षणवासुदेवान्॥ ३८॥

#### १२ ब्राह्मणाराधनम्

सम्पूज्य दद्याच निवेद्यमेभ्यश्चतुर्विधान्नं सहषड्सं च। प्रधानतः पायसमेव भूयं सम्पूज्य च ब्राह्मणान् भोजयेच॥ ३९॥

#### १३ सन्यासिमरणे अलङ्कारिकब्राह्मणभोजनम्

एकैकमूर्तेः अतमेव साष्टं द्विद्वादश द्वादशार्थं ततोऽपि।

चतुश्चतुर्द्विद्विरथैकमेकं तथैव श्रिक्तः परिपूज्य भक्तान्॥ ४०॥ सर्वान् हरौ दक्षिणां चैव दत्वा सप्प्रार्थयेत्प्रीयतां नामतोनु। इति द्विजा व्युत्क्रमतो वदेयुरेतत्तदोपोष्य परेऽहनीश्चम्॥ ४१॥ सम्पूज्य तद्वचतुरोऽथवैकं सम्भोज्य विप्राश्च तथा स्वयं च। भुझीत पश्चात्स्वगुरुन्नमेच न विस्मरेतापि कदाचनामुम्॥ ४२॥

#### १४ वृन्दावनकरणे फलम्

शिष्याभावे ग्रामजनाः प्रकुर्युरेतत्सर्वं पुण्यमवाप्यते तैः। महच्च तस्मात्पितृदेवा हरिश्च तुष्यन्ति तेभ्योऽधिकं चैव शिष्ये॥ ४३॥

एवं यतेः कर्मसमाख्ययैव समाहारो विधिवत्सङ्ग्रहेण। विष्णवाख्यतीर्थेन कृतः सदैव ज्ञेयः परो भागवतस्सतां हि॥ ४४॥

द्वीपे पयोब्धेः कृतगेहमध्ये महासभायां मणिलोचनायाम्। मध्ये महामञ्चगञेषभोगे ज्ञयानमाद्यं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥ ४५॥

# १५ अन्तिममङ्गळम्

वृतं तथाब्धौ पदजानुमग्नैः नृगायनादौश्च सृतेर्विमुक्तैः। मग्नैर्गलात्पिण्पलकक्षगैश्च स्त्रोतो (ता) यनैर्विततस्यापि नौमि॥४६॥

# १६ आदग्नासैत्यादिश्रुत्यर्थः

अरण्ययोस्मन्निमग्नैः पुरस्थैस्तथा सभायां मणिकाञ्चनायाम्। सर्वैश्चिदानन्दविबोधसारस्वरूपकैः संस्तुतं सन्नमापि॥४७॥

बहू कितः किं भवेत्सर्वमुक्तैर्नृपादिविध्यन्तसुरैः सदैव। यथाह वेदस्सुगुणोच्चरूपैः क्रमान्नतं सर्वदा नौमि विष्णुम्॥ ४८॥ अनन्तबाहूरुशिरस्सु नित्यं सौवर्णभूषास्थमणिप्रवेकैः। विराजमानं हि विसङ्ख्यासूर्यामितोरुदीप्तिं सततं च वन्दे॥ ४९॥

आनन्दतीर्थास्त्र्यमुनिं सुविद्यं वायुं कलौ दस्युविषेण सन्नान्। उज्जीवयानं हरिपादपद्मसुधारसेनैव सतो हि नौमि॥ ५०॥

सर्वोत्तमो विष्णुरथो रमा च ब्रह्मा च वायुश्च तदीयपन्त्यौ। अन्ये च देवास्सततं प्रसन्नाः हरेः सुभिक्तं मिय सन्दिशन्तु॥ ५१॥

॥ श्रीः॥

॥ इति श्रीमद्विष्णुतीर्थीयसन्यासपद्धतौ उत्क्रान्तिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु॥

श्रीमदानन्ततीर्थार्यभ्रातरं सुतपस्विनम्। श्रीविष्णुतीर्थयोगीन्द्रं नौम्यहं मुक्तिहेतवे॥॥

रूप्यपीठपुरस्थेन दासाख्येन द्विजन्मना। सन्न्यासपद्धतिग्रन्थो विष्णुतीर्थकृतः सताम्॥२॥

उपकाराय महतां मोक्षादिपुरुषार्थदः। लिखितोऽभीष्टदो भूयात्तेन प्रीणातु माधवः॥३॥

॥ श्री मद्विष्णुतीर्थीया सन्यासपद्धतिः समाप्ता॥

।स्रीलक्ष्मीवेङ्कटेशः प्रसीदतु॥

॥ श्री कृष्णार्पणमस्तु॥

# परिशिष्टम् A

# भगवत्पादकृता सन्न्यासपद्धतिः

नत्वा नारायणं देवं पूर्णं ब्रह्माक्षरोदितम्। यतेराचरणं वक्ष्ये पूर्णं ज्ञास्त्रानुसारतः॥१॥

अरुणोदयवेलायामुत्थाय हरिमानसः। शौचादिकं यथान्यायं कृत्वा दन्तां स्व शोधयेत्॥२॥

कटिशौचं मृदा कुर्यात् स्नानार्थं जलसंस्थितः। स्नानं कुर्याद्यथोक्तेन विधिना नियतो यतिः॥३॥

ध्रुतोर्ध्वपुण्डं विधिवत् प्रकल्प्यासनमुच्यते। मनो निवेश्याष्टमन्त्रान् यथाशक्ति जपेच्छुचिः॥४॥

द्वादशसहस्रावृत्ति परं ब्रह्माक्षरं जपेत्। दण्डोदकं जपस्यान्ते दद्याद्विधिविधानतः॥५॥

देवतां परमां सम्यक् पूजयेच विधानतः। भिक्षाकाले विधानेन चरेडिक्षाटनं यतिः॥६॥

एकत्र भिक्षाचरणं जघन्यमिति चोच्यते। अनेकभिक्षाचरणं मुख्यधर्मो यतेर्यतः॥ ७॥ त्रिसप्तपञ्चषष्टं वा निर्गच्छेन्न ततोऽधिकं। भिक्षाग्रहणकाले तु गृह्णीयात् पात्रतो जलम्॥८॥

भिक्षान्ने तु जलं प्रोक्ष्य पुनर्ग्राह्यं विदा जलम्। निवेदयेत् तदन्नं तु वारिजस्थोदकेन तु॥९॥

प्रोक्ष्य देवाय महते मूलमन्त्रेण वाग्यतः। तदन्नं भक्षयेत् स्वस्थो ह्यजवद्धरिमानसः॥१०॥

त्रिवारमुदकस्नानं यतेः शास्त्रेषु चोदितम्। अशक्तस्य यतेः शास्त्रे द्विवारं स्नानचोदना॥११॥

अत्यन्ताशक्तविषये त्वेकं स्नानं स्मृतं बुधैः। वेदान्तशास्त्राभ्यसनं मुख्यधर्मो यतेः स्मृतः॥१२॥

ध्यायेन्नारायणं देवं सृष्टिस्थित्यन्तकारकम्। भक्तानां मुक्तिदं नित्यमन्यथाज्ञानिनां तमः॥ १३॥

पूर्णप्रज्ञेन मुनिना व्यासवाक्यसमुद्धृतिः। न्यासधर्मस्य विषये शुभा सङ्क्षेपतः कृता॥१४॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचितः सन्न्यासपद्धतिः॥

# परिशिष्टम् B

# भगवत्पादकृतः प्रणवकल्पः

सिमचर्वाज्यकान् हुत्वा सम्यक् पुरुषसूक्ततः।
सर्वेषामभयं दत्वा विरक्तः प्रव्रजेद्धरिम्॥१॥
श्रुत्वा भागवतं श्रुद्धमाचार्यं शरणं व्रजेत्।
अधीहि भगवो ब्रह्मेत्यस्मै ब्रूयाद्गुरुः परम्॥२॥
उच्चारयंस्त्रिशस्तारं दक्षिणे श्रवणे तथा।
ऋषिच्छन्दोदैवतानि ब्रूयात् तस्य क्रमात् सुधीः॥३॥
अन्तर्यामीति गायत्री परमात्मेत्यनुक्रमात्।
विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्यश्चाक्षरदेवताः॥४॥
कृष्णो रामो नृसिंहश्च वराहो विष्णुरेव च।
परञ्ज्योतिः परं ब्रह्म वासुदेव इति क्रमात्॥५॥
अकारादेस्तथा शान्तान्तिशान्तान्तस्य देवताः।
एवमुक्ता तु तद्धानं ब्रूयाच्छिष्याय सद्गुरुः॥६॥
अष्टपत्रे तु हृत्पद्ममध्ये सूर्येन्दुविह्मगम्।
पीठं तन्मध्यपद्मस्थं नारायणमनामयम्॥७॥

उद्यदादित्यसङ्काशं तेजसाऽनुपमं सदा। सहस्रेणापि सूर्याणां सज्ञानानन्दरूपिणाम्॥८॥

अतिरक्ततलं भास्वन्नखराजिविराजितम्। वृतजङ्कं वृत्तजानुं हस्तिहस्तोरुमीश्वरम्॥९॥

महाकटितटाबद्धकाञ्चीपीताम्बरोज्ज्वलम्। निम्ननाभिं सुत्रिवलिं सुवृत्तोदरबन्धनम्॥१०॥

विज्ञालवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम्। वनमालाधरं हारवैजयन्त्यादिभिर्युतम्॥ ११॥

पृथुदीर्घचतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाम्बुजैः। युक्तमुन्निद्रपद्माक्षं स्फुरन्मकरकुण्डलम्॥१२॥

पूर्णचन्द्रायुतोद्रिक्तकान्तिमन्मुखपङ्कजम् । सुभृवं सुललाटान्तं किरीटाबद्धमूर्धजम्॥ १३॥

निशेषदुः खशमनं नित्यानन्दशुचिस्मितम्। विश्वादीं श्चैव कृष्णादीनेवम्भूतान् सनातनान्॥१४॥

अभिन्नानेव सततं तस्माद्विष्णोः परात्मनः। वराभयोद्यतकरान् नित्यानन्दैकरूपिणः॥१५॥

एवमुक्ता गुरुर्घ्यानं शपथं कारयेत् ततः। न विष्णुं वैष्णवांश्वैवाप्युत्सृजेयमिति त्रिशः॥१६॥

न चान्यदेवतासाम्यं तदैकामथवा हरेः। चिन्तयेयं मृतो वाऽपि न चाप्येकत्ववादिभिः॥१७॥

समत्ववादिभिर्वाहं सङ्गच्छेयं कथञ्चन। तन्निन्दकैश्च तङ्गक्तिन्दकैर्वा महामुने॥१८॥

एवं कृते तु शपथे मस्तके हस्तपङ्कजम्।

निधायोत्तीर्य संसारात् सुखी भव हरेः प्रिय॥१९॥

सर्वदुः खादिभिर्मुक्तो नित्यानन्दैकरूपिणः। सम्प्राप्य विष्णुसामीप्यं तत्रापि हरिभक्तिमान्॥ २०॥

भिक्तमांश्वान्यदेवेषु तारतम्यं च सर्वदा। सर्वोत्कर्षं स्मरन् विष्णोर्भ्याश्चैव सदा सुखी॥ २१॥

न मुक्तौ विष्णुनैक्यं वा मुक्तानां साम्यमेव वा। स्मरेथा इति चोक्का तु समयाननुशिक्षयेत्॥ २२॥

नित्यशश्च हरेः पूजा जपध्यानसमर्पणम्। कर्तव्यं तु त्वया वत्स जपश्च त्रिसहस्रकः॥ २३॥

मध्यमः प्रणवस्योक्तो योऽवरः स सहस्रकः। त्रिसहस्रात् परो यस्तु स उत्तमजपः स्मृतः॥२४॥

आत्मानं प्रतिबिम्बत्वे ध्यायन् बिम्बं जनार्दनम्। ध्यायंश्व सततं वत्स सपर्यां नित्यज्ञः कुरु॥२५॥

मानसिर्वाथ पुष्पैर्वा प्रणवेन समाहितः। अन्यां चैष्णवान् मन्त्राञ्जपेथा भक्तिपूर्वकम्॥ २६॥

श्रुणुष्व वैष्णवं शास्त्रं सदा वेदार्थतत्परः। वेदान् मन्त्रानुपनिषत्सहितान् सर्वदा श्रुणु॥२७॥

इतिहासपुराणे च पञ्चरात्रं तथैव च। तदर्थान् ब्रह्मसूत्रैश्च सम्यङ्गिणीय तत्त्वतः। विष्णोः सर्वोत्तमत्वं तु सर्वदा प्रतिपादय॥ २८॥

॥ इति श्रीमदानन्दतीर्थभगवत्पादाचार्यविरचितः प्रणवकल्पः॥

# परिजिष्टम् C

# श्रीविष्णुतीर्थानां परिचयः

# १ ब्रह्माण्डपुराणे रजतपीठपुरमाहात्म्ये

हनुमङ्गीममध्वाख्या त्रयो वायुसुता इमे। तं मध्यमारुतं सर्वे परिवारतया सदा। संसेवितुं सुरा भूमाववतेरुरिति श्रुतम्॥६.१६॥

ते च तिच्छिष्यतां प्राप्य तन्मार्गं समघोषयन्। तेषु मुख्यौ विष्णुतीर्थपद्मनाभाख्ययोगिनौ॥६.१७॥

अत्यक्तदेहस्तत्राद्यः प्रवर्तयति तन्मतम्।

बदर्यां व्यासदेव्को गुरोः प्रीत्यै पुनः कलौ॥६.१८॥

#### २ मध्वविजये

#### २.१ चतुर्थसर्गे

निशाचरारेरिव लक्ष्मणः पुरा

वृकोदरस्येव सुरेन्द्रनन्दनः । गदोऽथ शौरेरिव कर्मकृत् प्रियः सुभिक्तमान् विश्वविदोऽनुजोऽभवत् ॥४.२६।

कदाचिदाप्यालयबुद्धिरालयं निवेदयन् पालकमेनमेतयोः। दृढस्वसं न्यासनिषेधनिश्चयां धवानुमत्येदमुवाच मातरम्॥४.२७॥

#### २.२ पञ्चदशसर्गे

मध्येन्दोर्नित्यसम्बन्धान्निस्तमस्तापचेतसोः। वैकुण्ठं यातयोः पित्रोर्गृहेऽस्यावरजोऽवसत्॥११।

विधिभ्रूविभ्रमभ्रउयद्धनगोधान्यसम्पदा। निर्वेदिना वेदविदा तेनापे वेदवादिराट॥ १२।

पारिव्राज्यं प्रार्थयन्तं पादानम्रमिमं मुहुः। समयापेक्षयोवींक्षो गमयामास धाम तम्॥ १३॥

न जघास न सुष्वाप न जहास स धीरधीः। समयार्थी स्मरँज्येष्ठं रामं रामानुजो यथा। ९४।

राज्ये कथँचिन्निक्षिप्य राजानं विरहार्दितम्। अवतारभुवं प्रायाद्मगवाँ छरदत्यये। १५।

विशुद्धिद्वुलं श्रौतं शुचिं कृतिपतृक्तियम्। विरक्तं विषयान् भुक्ता व्यधान्मध्वोऽनुजं यतिम्। ९६।

रहस्यतिरहस्यं तद् ब्रह्म ब्रह्मसमो ददौ। अमुष्मै पँचतपसो न विदुर्यत्तपस्विनः॥९७।

प्रेमामृतप्रसन्नास्यस्मिताङ्गापाङ्गपूर्वकम् ।

२. मध्वविजये ९१

श्रेएविष्णुतीर्थनामास्मैः प्रीतितीर्थः प्रदत्तवान्। ९८। श्रवणेनानुवादेन मननेनावृथाकरोत्। कालं वेदान्तशास्त्रस्य वेदान्तगुरुसोदरः॥१९। स दान्तिभक्तिमाधुर्यपरिचर्यादिमेदुरैः। महाविटिपनं चक्रे गुरोः स्वस्थं कृपाङ्करम्॥१००। अनन्तमतिकारुण्यकल्पद्रुमवतो जनैः। अवर्ण्यो महिमा तस्य लौल्यात्सं वर्ण्यते मनाक्। १०१। चतुरोऽसौ प्रवचने मनुसं सिद्धिमान्मनः। सङ्ख्या मां पूरणी मागान्मध्वदासमिति व्यधात्। १०२। दिशं प्रयातं शशिनश्चरन्तं भुव्यशोधयत्। तीर्थकं विष्णुतीर्थं च विष्णुतीर्थश्च तीर्थकम्। १०३। अकामानामनेकेषां सिद्धिभूमिं तपस्विनाम्। तिरोहितात्मा प्रापासौ हरिश्चन्द्रमहीधरम्। १०४। द्वन्द्वदुःखानले वीरो मात्सर्येण विमत्सरः। तत्याज मत्वा तस्यासावशनादीन्धनायितम्। १०५। भक्तैरनुगिरं नीतं प्रार्थितो यतिशेखरः। पँचगव्यं पपौ किँचित्पँचमे पँचमे दिने ११०६। स त्यजन्साहसी तच्च तपस्तेपेऽतितापसम्। बिल्वपर्णैः क्षितौ पन्नैस्तृप्तिमान्सिललैरपि। १०७। यथेष्टमध्यास्त ज्ञिलां यमी सुनियमी स ताम। नाध्यासते यामेकाहं दैवभग्नास्तपस्विनः ॥०८। पवनां शानुजो जित्वा पवनं रेचकादिभिः। विषयेभ्यो हृषीकाश्वान् मनोयन्त्रा समाहरत्। १०९।

स्मरन्मुरारेराकारं दध्यावध्यात्मकोविदः। समाधिमाधिञ्ञमनं योगलभ्यं स लब्धवान्।११०।

मौकुन्दे सुन्दरे रूपे स्वानन्दादिगुणार्णवे। स्वाश्चर्यरत्ने मग्नात्मा नान्यत्किँचिद्विवेद सः॥१११।

कामत्रासिवहीनस्य तस्य सुज्आनचक्षुषः। विना कैवल्यसाम्राज्यं नार्घो योगमणेरभूत्॥११२।

मध्वानुजे मध्वनाथो यं प्रसादं व्यधात्तदा। स चित्ताविषयत्वाद्वा गोप्यत्वाद्वा न वर्ण्यते। ११३।

अहो महाबोधसेवामहिमास्मिन्युगे यतः। धन्योऽसौ सिद्धिमापेमां सोऽमरैरित्यलाल्यत॥११४।

तीव्रव्रतोऽतीन्द्रियविद्विद्याब्धिस्तर्कपण्डितः। अनिरुद्धपदाधारः प्रेष्ठः शिष्यस्तमाययौ ॥११५।

तेन सम्प्रार्थितं प्राप्तं रूप्यपीठिममं पुनः। कृत्स्चज्ँअं कृपया स्वेषु सम्प्राप्तं मेनिरे प्रजाः॥११६।

कवीन्द्रतिलको विद्वच्छेखरस्तापासाग्रणीः। मध्वकेलीशुकोऽस्याभूच्छिष्यो व्यासपदाश्रयः।११७।

असौ दास्यं ध्रुवं यान्तं महान्तं महतामि । व्यधादनुग्रहं कुर्वन् सामर्थ्यैः कौतुकं नृणाम्।११८॥

आरुरोह दुरारोहं स परैः प्रीतिकृद्धरेः। महान्तं महिमानं च महीभ्रं च गुहप्रियम्।११९॥

#### ३ सम्प्रदायपद्धतौ

मध्वाह्वयोऽयं मरुदीश्वरोऽदान्मुदा हृषीकेशनृसिंहतीर्थयोः।

९३

सीतानुजाभ्यां सहितं रघूत्तमं चतुर्भुजं कालियमर्दनं हरिम॥ १५॥

जनार्दनोपेन्द्रसुयोगिनोरदात् कृष्णं द्विहस्तं भुजगस्य मर्दनम्। श्रीविट्ठलं वामनयोगिनोऽपि तं श्रीविष्णितीर्थस्य च सूकरात्मकम्॥१६॥

श्रीरामतीर्थस्य नृसिंहरूपिणं ददौ तथाऽद्जोक्षजयोगिनः पुनः। श्रीविट्टलं श्रीरघुवंशशेखरं श्रीपद्मनाभाह्वययोगिमौलये॥१७॥

यः साक्षादनुजः श्रमादिसुगुणः श्रीविष्णुतीर्थाह्वयः यः कर्णातकपूर्वसज्जनौरुः श्रीपद्मनाभाह्वयः। ताभ्यामेष ददौ गुरुः सदयितो विष्णुः स्थितो यासु ताः मूर्तीः शुद्धशिलात्मिकाः स्थलयुगे तस्यानुजोऽस्थापयत्॥ १८॥

ततो दयावारिनिधिर्ग्रामे सेतुतिलाह्वये। स्वज्ञास्त्रग्रन्थमकरोङ्गतं पूर्णज्ञेमुषिः॥१९॥

तेषां मन्त्रोपदेशव्रतनियमसुरार्चादिके सम्प्रदायं युग्मे युग्मे प्रभिन्नं कुरुत इति हृषीकेश्चतीर्थादिकेषु। आज्ञाप्यारादटन्तं व्रतनियमविधौ पद्मनाभं यतीन्द्रं दृष्ट्वा चाज्ञाप्य भिन्नं विधिममितमितः क्षेत्रतो निर्गतोऽभूत्॥ २०॥

तिरोहिते सन्मतेऽस्मिन् विष्णुतीर्थो गुहाचलात्। आगत्योद्भत्य तत्रत्य ग्रन्थान् स प्रथयिष्यति॥ २१॥

यस्मात् सर्वहृदिस्थसंशयचयं ज्ञात्वा यतीशो मरुत् सद्धर्माश्च तिलांशतोऽप्युपदिशेत्याज्ञानिबन्धं व्यधात्। तस्मात् सेतृतिलेति लोकगदितं क्षेत्रं सुतीर्थात्मकं स्कन्दादृर्बिलतोऽवतीर्णयतिना संशोध्यते कालतः॥ २२॥

#### ४ सरसभारतीविलासे

शरच्छते व्यतीते तु देवानामाज्ञया प्रभोः। एकतां मूलरूपेण लोके स्वीये गमिष्यति॥ ७.२५॥ स्वानुजं विष्णुतीर्थं च तपसा धूतकल्मषम्। प्रेषियप्यति सत्तत्त्वकथनाय कलौ किल॥ ७.२६॥

#### प्र तीर्थप्रबन्धे

श्रीविष्णुतीर्थमुनिमित्र सुरारिजैत्र श्रीकृष्णपज्जलजभृङ्ग कृताघभङ्ग। सह्येश देहि सकलैरुपजीव्यमन्नं संहर्तृ सर्वभुवनस्य कुमार मह्यम्॥ १.४२॥

#### ६ चरमश्लोकाः

वकृत्वशक्तिदश्चायं वादे विजयदस्तथा। पाठशक्तिप्रदः सम्यक् शापानुग्रहशक्तिदः॥

एडमूकोऽपि वाग्मित्वं जडोऽपि प्राज्ञमौलिताम्। यत्कृपालेशतो याति विष्णुतीर्थं तमाश्रये॥

विष्णुतीर्थः कल्पवृक्षः विष्णुतीर्थश्च कामधुक्। चिन्तामणिर्विष्णुतीर्थः यतीन्द्रः सर्वकामदः॥

# ७ कस्मिंश्वित् प्राचीनकोशे

मार्गशीर्षे शुक्रपक्षे विष्णुतीर्थो महामनाः। गुहस्यैव समीपे तु ह्यारुहत् पौर्णमीदिने॥

# ८ स्तोत्रम्

श्रीविष्णुरित्येव हि मन्त्रराजः विष्णोः पदाब्जस्मरणाय वाचि। अस्तीति विख्यातममुं भजामि श्रीविष्णुतीर्थाभिधया जगत्याम्॥

विष्णुस्तु यस्यादिगुरुर्गुरोरलं तं विष्णुतीर्थं प्रणमामि नित्यम्। अवञ्यविज्ञेयसुबिम्बरूपविज्ञानलाभौ यत एव हि स्यात्॥

शास्त्रेषु सर्वेष्वपि विष्णुरेव प्रतीयते मुख्यतया च यस्य। तं विष्णुतीर्थं प्रणमामि रूपसामान्यबोधाय महाफलाय॥

यस्याभिषेकाय सुतीर्थराजः श्रीविष्णुरुक्तो ऋषिदेवसङ्घैः। सार्धत्रिकोट्युत्तमतीर्थमज्जनं यच्चिन्तनं तं भज विष्णुतीर्थम्॥

विष्णौ तु यस्याध्वरपूर्वकर्म श्रये ततः संश्रितविष्णुतीर्थम्। क्षेत्राणि सर्वाण्यपि विष्णुरेव सूपायभूतश्च स एव तस्य॥

# ९ वैश्वनाथिनारायणाचार्याः सदाचारस्मृतिटीकायाम्

गुरोर्गभीराञ्चयवेदितारं श्रीविष्णुतीर्थोत्तमकर्णधारम्। लब्ध्वा सदाचारविधानसारमहार्णवं साधुतरीतरामि॥